वर्ष ४१] * * * [अङ्क ९

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे । हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥

संस्करण १,५०,०००

विषय-सूची

कल्याण, सौर आश्विन २०२४, सितम्बर १९६७

चित्र-सूची

वार्षिक मूल्य
भारतमें ८.५०
विदेशमें १५.६०
(१५ शिलिंग)

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय । सत-चित-आनँद भूमा जय जय ॥
जय जय विश्वरूप हरि जय । जय हर अखिलात्मन् जय जय ॥
जय विराट जय जगत्पते । गौरीपति जय रमापते ॥

साधारण प्रति
भारतमें ५० पै०
विदेशमें ८० पै०
(१० पेंस)

सम्पादक—हनुमानप्रसाद पोद्दार, चिम्मनलाल गोस्वामी, एम्० ए०, शास्त्री
मुद्रक-प्रकाशक—मोतीलाल जालान, गीताप्रेस, गोरखपुर
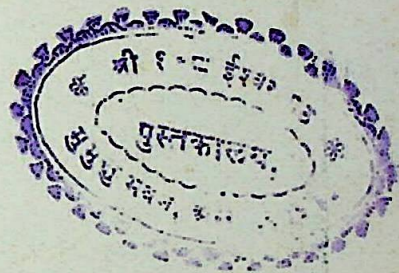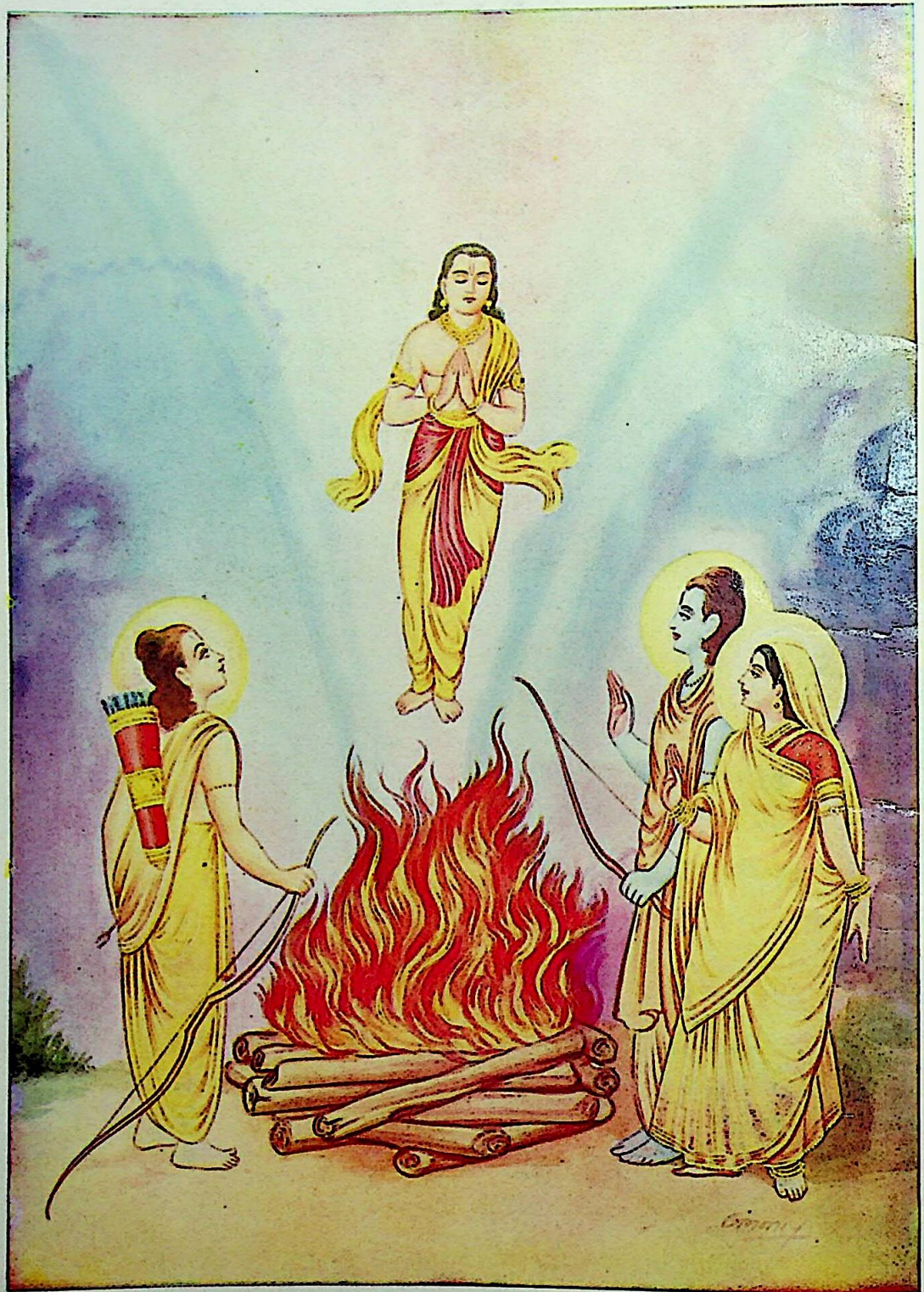
शरभंग मुनिका दिव्यधाम-प्रयाण

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते । पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥
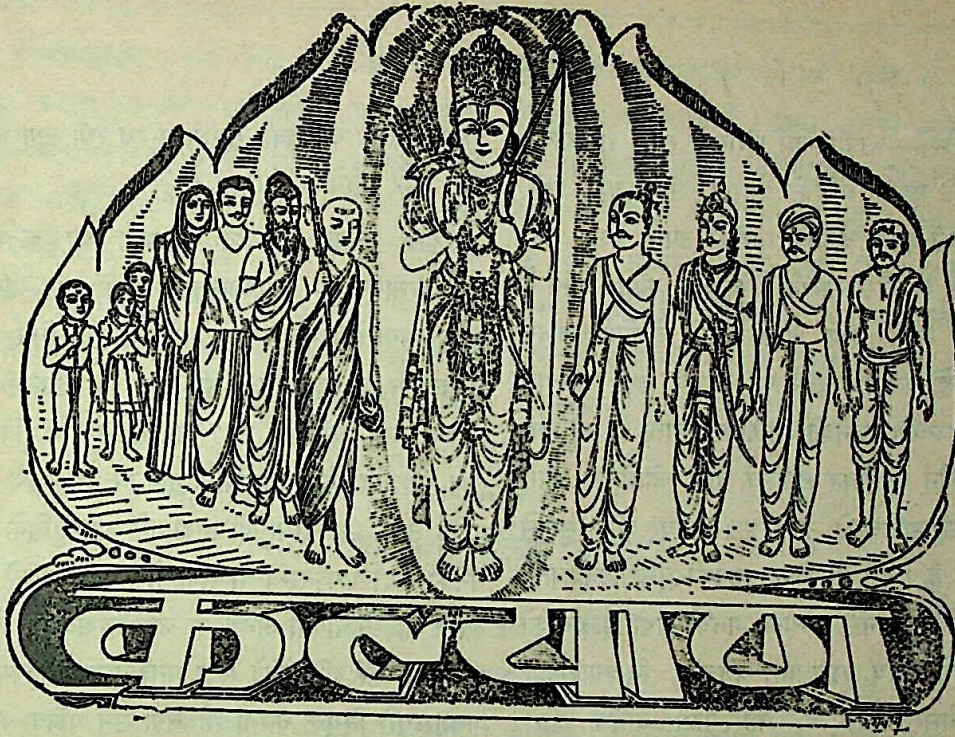
अविरतभवभावनातिदूरं भवविमुखैर्मुनिभिः सदैव दृश्यम् ।
भवजलधिसुतारणाङ्घ्रिपोतं शरणमहं रघुनन्दनं प्रपद्ये ॥
रतिपतिशतकोटिसुन्दराङ्गं शतपथगोचरभावनाविदूरम् ।
यतिपतिहृदये सदा विभातं रघुपतिमार्तिहरं प्रभुं प्रपद्ये ॥

वर्ष ४१ } गोरखपुर, सौर आश्विन २०२४, सितम्बर १९६७ { संख्या ९
पूर्ण संख्या ४९०

शरभंग मुनिका ब्रह्मधाम-प्रयाण

विधिवत् अग्निस्थापना करके किया प्रज्वलित उसे अशेष ।
घृतकी आहुति मन्त्रसहित दे, मुनिने उसमें किया प्रवेश ॥
जला सभी कुछ, अग्नितुल्य धर तेजस्वी कुमारका रूप ।
अग्निराशिसे ऊपर उठकर शोभा पाने लगे अनूप ॥
रामभद्र सीता लक्ष्मण सह रहे देखते श्रीभगवान् ।
सुर-मुनि-लोक लाँघ पहुँचे मुनि चिन्मय ब्रह्मधाम द्युतिमान् ॥

कल्याण

याद रक्खो—उपनिषद्में शरीरको रथ, इन्द्रियोंको घोड़े, मनको लगाम, बुद्धिको सारथी, जीवात्माको रथी और विषयोंको रथके चलनेके मार्गकी उपमा देकर यह कहा गया है कि जैसे सारथी विवेकयुक्त कहा जाना है यह स्मरण रखने तथा जाननेवाला, घोड़ोंकी लगाम थामकर उन्हें चलानेमें चतुर एवं दुर्धर्ष तथा बलवान् घोड़ोंको नियन्त्रण रखनेकी शक्तिवाला होता है तो वह घोड़ोंके अधीन न होकर लगामके द्वारा घोड़ोंको अपने वशमें रखकर मालिकको उसके इष्ट-स्थानपर शीघ्र सुखसे पहुँचा देता है। वैसे ही जिस पुरुषकी बुद्धि विवेकवती, कर्तव्याकर्तव्यके ज्ञानसे सम्पन्न, मनको तथा इन्द्रियोंको वशमें रखनेमें समर्थ, सावधान, बलवान्, निश्चयात्मिका तथा ईश्वराभिमुखी होती है, वह पुरुष बुद्धिके द्वारा मनको संयममें रखकर इन्द्रियोंके द्वारा होनेवाले प्रत्येक आचारको शास्त्रानुकूल भगवत्प्रीत्यर्थ निष्कामभावसे सम्पन्न करके अपने-आपको भगवान्के धाममें ले जाता है।

याद रक्खो—जिसकी बुद्धि अनिश्चयी, अविवेकवती, मनको अपने अधीन रखनेमें असमर्थ, इन्द्रियोंको मनके सहारे इच्छानुसार सत्पथपर भगवान्के मार्गपर चलानेमें अक्षम तथा बहुशाखावाली होती है, उसका असंयत मन उच्छृङ्खल तथा बहिर्मुखी बलवान् इन्द्रियोंके वशमें हो जाता है। इन्द्रियाँ सदा-सर्वदा दुराचार, दुष्कर्ममें लगी रहती हैं। फलतः बुद्धि और भी कुविचार तथा अविचारसे युक्त हो जाती है और वह पुरुष मानव-जीवनके परम तथा चरम लक्ष्य भगवत्प्राप्तिसे वञ्चित तो रहता ही है, बुरे कर्मोंके फलस्वरूप सदा संसारचक्रमें भटकता रहता है—बार-बार आसुरी योनियोंमें जाता है और नरकोंकी असह्य यातना भोगनेको बाध्य होता है। इस प्रकार उसका घोर पतन हो जाता है—वैसे ही जैसे मूर्ख तथा अविवेकी सारथीका रथ रथी तथा घोड़ोंके समेत गहरे गड्ढेमें गिर पड़ता है!

याद रक्खो—इसलिये मनुष्यका यह कर्तव्य है कि परमानन्दमय भगवान्की प्राप्ति या मोक्षरूपी अथवा भगवत्प्रेमस्वरूप महान् लक्ष्यपर सदा स्थिर रहे—भगवत्प्राप्ति या भगवत्प्रेमको ही जीवनका एकमात्र परम उद्देश्य समझे, बुद्धिको सदा भगवत्-सम्बन्धी विचारोंमें तथा भगवत्प्राप्तिके साधनोंके अनुष्ठानमें ही लगाये रक्खे, पवित्र तथा भगवदभिमुखी निश्चयात्मिका बुद्धिके द्वारा मनको सदा भगवत्सम्बन्धी संकल्पों तथा स्मरणमें संलग्न करता रहे, कभी भी अनर्थ या व्यर्थ निश्चय या चिन्तन न करे। और इन्द्रियोंको सदा भगवत्सम्बन्धी विषयोंमें ही साधनरूपसे नियुक्त करता रहे तथा उन पवित्र भगवत्-सम्बन्धी विषयोंमें ही निरन्तर इन्द्रिय, मन, बुद्धिको रसकी—निर्मल भगवत्प्रेमकी—परमानन्दकी प्राप्ति होती रहे।

याद रक्खो—जिसके कान परनिन्दा, पापचर्चा, असत् वार्ता, व्यर्थकी बातचीत एवं पतनकी ओर ले जानेवाले गान-वाद्य या कोई भी शब्द और अपनी प्रशंसाके वाक्य न सुनकर केवल सत्-चर्चा, भगवत्-लीला-कथा, भगवत्-स्वरूपकी वार्ता, संतों-भक्तोंके गुणगान, जीवनको उच्चस्तरपर पहुँचानेवाले वाक्य सुनते रहते हैं; जिनकी आँखें भोग्य-विषयोंको न देखकर प्राकृत जगत्में सर्वत्र भगवान्को और भगवान्के सौन्दर्यको तथा भगवद्विग्रहों, साधुमहात्मा तथा संतोंको, पवित्र वस्तुओं तथा स्थानोंको देखती हैं; जिनकी त्वगिन्द्रिय कोमल विकारी पदार्थों, विकार उत्पन्न करने तथा बढ़ानेवाले अङ्गोंका स्पर्श न करके पवित्र करनेवाले संत-चरणोंका, जीवनमें सात्त्विकता लानेवाले पदार्थोंका स्पर्श करती हैं; जिनकी जिह्वा स्वाद लगनेवाले विकारी राजस, तामस पदार्थोंका रस न चखकर सात्त्विक पदार्थोंका

तथा भगवत्प्रसादका रस लेती है और जिनकी नासिका विकार उत्पन्न करनेवाले सुगन्ध-द्रव्योंको छोड़कर पवित्र गन्धका, भगवत्प्रसादरूप गन्धका और सात्त्विक पदार्थोंके गन्धका सेवन करती है—वे पुरुष इन इन्द्रियोंके द्वारा भगवान्‌की सेवा करते हैं; इन्द्रियोंके ये पवित्र विषय उनके मन-बुद्धिको और भी पवित्र करते रहते हैं और उनके शरीरोंके द्वारा भी भगवत्सेवाका ही कार्य होता है—इस प्रकार उनके मन, बुद्धि, इन्द्रिय तथा शरीर स्वयं भगवत्कार्यमें लगे रहते हैं और एक दूसरेको लगाते रहते हैं। इससे उनका जीवन पवित्र, शान्त, सुखमय होकर भगवत्प्राप्तिका साधनस्वरूप बन जाता है और वे अन्तमें भगवत्प्राप्ति या भगवत्प्रेम-प्राप्तिके द्वारा सफलजीवन हो जाते हैं। अतएव सदा सर्वदा बुद्धिको विवेकवती बनाकर मन-इन्द्रियोंको निरन्तर भगवान्‌के पवित्र पथपर चलाते रहें—यही परम कर्तव्य है।

'शिव'

एक महात्माका प्रसाद

[सत्सङ्गमें यथाश्रुत यथागृहीत]

(प्रेषक—'माधव')

साधकका अर्थ है जिसे सत्सङ्ग करनेकी स्वतन्त्रता हो। सिद्धिका अर्थ है जीवनका उपयोगी हो जाना। सत्सङ्गका अर्थ अभ्यास नहीं—असत्‌का त्याग ही है सत्सङ्ग। श्रद्धा और विश्वासके आधारपर साधन-निर्माण सत्सङ्गके द्वारा ही होता है। असत्‌का त्याग ही सत्सङ्गका मूल आधार है। वह असत् है क्या? बुराई करना, बुराई चाहना असत् है। सच तो यह है कि बुराईका जीवनमें कोई स्थान है ही नहीं। हमारे शरीर, मन, वाणी, क्रियासे कभी किसीकी बुराई न हो—यही है सच्चा सत्सङ्ग। हम कभी भी बुराई नहीं करेंगे—इस सत्यको स्वीकार कर लें। सामर्थ्यसे कर्मका सम्पादन होता है। बलके बिना कर्मका आरम्भ नहीं होता। जो कुछ हमारे पास बल है—तनका, धनका, योग्यताका—सबका सदुपयोग करना ही सत्सङ्गका सार रहस्य है। बलका दुरुपयोग ही बुराई है।

राष्ट्रीयता और मजहब—दोनों ही जीवनसे बुराईको निकाल देना चाहते हैं; परंतु इनकी आड़में बुराइयाँ हुईं। राष्ट्रीयताका अर्थ है न्याय और मजहबका अर्थ है प्रेम। न्याय और प्रेम हमारे जीवनमें आ जायँ तो हमारा जीवन चरितार्थ हो जाय। न्यायका अर्थ है अपराधी अपने अपराधसे परिचित हो जाय, फिर पीड़ित हो जाय और अपराध न करनेका व्रती हो जाय। जबतक मनुष्य अपने साथ न्याय नहीं कर सकता, वह कभी सत्सङ्गका अधिकारी नहीं हो सकता। अपने प्रति न्याय एवं दूसरोंके साथ प्रेम और क्षमा। अपने अधिकारका ज्ञान मानवको है। प्रेम कहता है अपने अधिकारका त्याग करो। अधिकार-त्यागके बिना एकता रह नहीं सकती। जहाँ अपने ही लाभका ध्यान है, वहाँ ईमानदारी कहाँ है? जबतक मनुष्य अपने साथ न्याय नहीं करता, राष्ट्रीयताका विकास हो नहीं सकता। राष्ट्रीयताके बिना सुन्दर समाजका निर्माण हो नहीं सकता। इसीलिये राष्ट्रीयता=न्याय; मजहब=प्रेम।

ईश्वरको माननेवाले सभी वैष्णव हैं; क्योंकि वे ईश्वरको 'अपना' बनाकर उसे अपने अंदर प्रीति—प्यारसे उपलब्ध

करते हैं। मुहम्मदने उसे दोस्त माना, ईसाने पिता माना, मीराँने पति माना। जो मुहम्मदका दोस्त, ईसाका पिता और मीराँका पति है, वह हम सबका 'अपना' है और सच तो यह है कि उसके सिवा 'अपना' कोई है नहीं।

वैष्णवके हृदयमें घृणा, ईर्ष्या, क्रोध उत्पन्न ही नहीं होते। राष्ट्रीयता असफल हो गयी अपने प्रति न्याय न करनेसे। मजहब असफल हो गया दूसरोंके प्रति प्रेम न करनेसे। अधिकार छोड़नेसे ही जीवन शुरू होता है। उदारता, प्रेम, शान्ति और मुक्तिसे परिपूरित जीवन प्रभुको प्रिय होता है—यही सिद्धि है।

मनुष्यका अहं विभु है। शरीर, इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि, अहं क्रमशः सूक्ष्मतर हैं। विश्वकी शान्ति, अपना कल्याण और सुन्दर समाजका निर्माण एक ही वस्तु है। ईमानदारी स्वयं महान् फल है। चाहे कुछ भी हो, तुम्हारी आत्मीयता हमें सदा मिलती रहे—साधकका यही है भाव। प्यारमें मुख्य तत्त्व है अपनापन। भगवान् मेरा है और सब भगवान्का है, उसके सब प्यारे हैं।

तन भी तेरा मन भी तेरा, तेरा सब कुछ प्रान।
सब कुछ तेरा, तू है मेरा, यह दादू का ज्ञान॥

भक्तसे किसीको भय नहीं होता। भक्तको भी किसीसे भय नहीं होता; क्योंकि भगवान् उसके हैं। किसीसे वह कुछ नहीं चाहता, उसका कुछ नहीं है। सर्वसमर्थ उसका है। भक्तमें भय, चिन्ता, शोक नहीं होता। उसमें रहता है अपनेसे उदित नित्य नव रस, जिसे भगवान् पान करते हैं।

ईमानदारीका मूल्य सुख-सुविधा नहीं है। रागरहित होनेके लिये अपने प्रति न्याय तथा दूसरेके प्रति प्रेमका होना अनिवार्य है। रागरहित भूमिमें योगका उदय होता है। रागरहित व्यक्ति ही योगवित् होता है, योगवित् होता है आत्मवित् और आत्मवित् होता है ब्रह्मवित्। दूसरेके अधिकार देते जायँ, अपने अधिकार छोड़ते जायँ—सुख और शान्तिका यही राजपथ है। चिर शान्ति, अमरत्व और शोकरहित स्थितिका यही है एकमात्र अमोघ साधन।

* * *

भक्ति भक्तका जीवन और भगवान्का स्वभाव है। भक्त वह, जो भगवान्को अपना मानता है। 'वे' मिलें न मिलें, उनकी इच्छा। उनसे कुछ लेना नहीं है। भगवान्को मान लेना ही भगवान्की सबसे प्रिय वस्तु है। शान्ति, मुक्ति, अमरत्वसे भी बढ़कर भक्ति है। भक्तिके पीछे-पीछे मुक्ति और शान्ति चलती हैं। 'उस'के होकर सदाके लिये निश्चिन्त और निर्भय हो जाओ।

जीवनकी सफलता

भोग अनित्य, अपूर्ण सदा हैं, क्षणभंगुर, दुःखोंकी खान। हैं प्रत्यक्ष देखते, तो भी उन्हें चाहते सुखमय मान॥
नित्य मनोरथ नये-नये हम करते, रचते विविध उपाय। मिलते नहीं किंतु मनचाहे, हो रहते निराश, निरुपाय॥
मिलते तो फिर अधिक प्राप्त करनेकी मनमें उठती चाह। इसी बीच वे मिले हुए भी चल देते विनाशकी राह॥
रहता यह विनाशका भय नित, छा जाता विनाशपर शोक। इन असंख्य भय-शोकोंसे है भरा सदा भोगोंका लोक॥
'भोगोंमें सुख है'—यह रहती जबतक मनमें छायी भ्रान्ति। तबतक नये-नये दुख आते कभी न मिल सकती सुख-शान्ति॥
जो हम स्थिर सुख-शान्ति चाहते तो भोगोंकी आशा त्याग। परम सुहृद आनन्दरूप प्रभुको ही भजें सहित अनुराग॥
समझें एक उन्हींको 'मेरे' उनके ही हो रहें अनन्य। उनके एक पुण्य आश्रयसे जीवन सफल, परम हो धन्य॥
यही चरम फल है जीवनका, यही साध्य है एक पुनीत। करें इसीके लिये प्रार्थना प्रभु-चरणोंमें नित्य विनीत॥

संतों—महापुरुषोंकी महिमा

(ब्रह्मलीन पूज्यपाद अनन्तश्रीविभूषित श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके वचनामृत)

भगवान् और भगवत्प्राप्त पुरुषोंके कर्म अलौकिक और दिव्य होते हैं। उनके कर्मोंका रहस्य समझना चाहिये। उनके लिये न तो कोई कर्तव्य ही है और न कुछ प्राप्तव्य ही। उनकी सारी चेष्टाएँ केवल संसारके कल्याणके लिये ही होती हैं। अतः उनकी प्रत्येक क्रियामें दिव्य अलौकिकता झलकती है। उन क्रियाओंमें न तो कर्तापन ही है और न कर्म तथा उनके फलमें ममता, आसक्ति और कामना ही है; अतः उनका अनुकरण करनेसे मनुष्यका कल्याण हो जाता है, इसमें तो कहना ही क्या है, उनकी क्रियाओंके रहस्यको समझनेपर ही मनुष्यके चित्तमें प्रतिक्षण प्रसन्नता और शान्ति होती रहती है। भगवान् और भगवत्प्राप्त पुरुष कर्म करते नहीं, उनके द्वारा शास्त्रविहित कर्म स्वाभाविक होते रहते हैं, इसीलिये उनकी क्रिया आदर्श मानी गयी है। वही साधकके लिये साधन है।........

× × ×

........भगवत्प्राप्त पुरुषोंके लिये कोई भी प्राप्तव्य वस्तु नहीं रहती; क्योंकि प्राप्त करने योग्य सच्चिदानन्दघन परमात्माकी उन्हें प्राप्ति हो चुकी है। अतः उनकी सम्पूर्ण आवश्यकताएँ समाप्त हो चुकी हैं। वे आप्तकाम हैं। उनमें कामनाओंका अत्यन्त अभाव है। इसलिये उनका किसी भी कर्म, प्राणी या पदार्थमें किंचिन्मात्र भी प्रयोजन नहीं रहता। उनकी स्थिति परब्रह्म परमात्मामें होनेके कारण उनका अपने देहसे भी कोई प्रयोजन नहीं है; क्योंकि वे विज्ञानानन्दघन परमात्मामें नित्य तृप्त और संतुष्ट हैं, इसलिये न तो उनके लिये कोई कर्तव्य है और न प्राप्तव्य ही।........

× × ×

........उन महात्मा पुरुषोंके मन, बुद्धि, इन्द्रियाँ, शरीर, आचरण, वाणी—सभी पवित्र और विलक्षण होते हैं; इसलिये उनके आज्ञापालन, सेवा, नमस्कार और वार्तालाप करनेसे मनुष्य ज्ञानको प्राप्त करके मुक्त हो जाता है (गीता ४ । ३४-३५) । ज्ञानी महात्माके कर्म अपने वर्ण, आश्रम, स्वभाव और देशकालके अनुसार होते हैं; किंतु वे सभी वर्ण और आश्रमके मनुष्योंके कर्तव्यकर्मोंको स्वयं करके नहीं दिखला सकते हैं। अतः वे कल्याणकामी साधकोंको उनके वर्ण, आश्रम, स्वभाव और देशकालके अनुसार उनके कर्त्तव्यकर्मोंको वाणीद्वारा ही बतलाया करते हैं; इसलिये उनकी आज्ञाका पालन करनेसे मनुष्य संसार-सागरसे पार हो जाता है। (गीता १३ । २५)

× × ×

ज्ञानीपुरुषके द्वारा शास्त्रविहित कर्मोंकी अवहेलना या त्याग नहीं होता; फिर शास्त्रविपरीत कर्म तो उनके द्वारा हो ही कैसे सकते हैं? क्योंकि यदि ऐसा होने लगे तो लोग भ्रष्टाचारी होकर नष्ट हो सकते हैं; किंतु महापुरुषोंकी क्रिया श्रद्धा-विश्वासपूर्वक होती हुई देखकर कोई भी मनुष्य पथभ्रष्ट नहीं हो सकता; बल्कि लोग उनके शुभ आचरणोंको देखकर उनके अनुसार सावधानीके साथ निःस्वार्थभावसे कर्म करनेमें तत्पर हो जाते हैं।

× × ×

भगवान् तो भजनेवालोंको भजते हैं, परंतु वे दयालु संत नहीं भजनेवालेका, यहाँतक कि गाली देने और अहित करनेवालेका भी हित ही करनेमें तुले रहते हैं। कुल्हाड़ी चन्दनको काटती है, पर चन्दन उसे स्वाभाविक ही अपनी सुगन्ध दे देता है।

काटइ परसु मलय सुनु भाई।
निज गुन देइ सुगंध बसाई॥

× × ×

ऐसे महापुरुषोंकी दया ही नहीं, समता भी बड़ी अद्भुत होती है। उन्हें यदि समताकी मूर्ति कहें तब भी अत्युक्ति नहीं। भगवान् सम हैं और उन संतोंकी भगवान्में स्थिति है, इसलिये वे भी स्वाभाविक ही समताको प्राप्त हैं। जैसे सुख-दुःखकी प्राप्ति होनेपर अज्ञानी पुरुषकी शरीरमें समता रहती है वैसे ही संतोंकी चराचर सब जीवोंमें समता रहती है।

× × ×

मान-अपमान और निन्दा-स्तुतिमें भी संतमें समता रहती है, किंतु यह आवश्यक नहीं कि व्यवहारमें सब जगह समताका ही प्रदर्शन हो। हृदयमें मान-अपमानकी प्राप्तिमें हर्ष, शोक आदि विकार नहीं होते।

× × ×

नाटकके पात्रोंमें जैसे सभी प्रकारके बाहरी व्यवहार होते हैं; परंतु उनके मनमें अभिनय-बुद्धिके अतिरिक्त कोई वास्तविकता नहीं होती, इसी प्रकार संतोंके द्वारा नाटकवत् बाहरी व्यवहार होनेपर भी उनके मनमें वस्तुतः कोई विकार नहीं होता।

× × ×

संतमें केवल समता ही नहीं, समस्त विश्वमें हेतु और अहंकाररहित अलौकिक विशुद्ध प्रेम भी होता है। जैसे भगवान् वासुदेवका सबमें अहैतुक प्रेम है, वैसे ही भगवान् वासुदेवकी प्राप्ति होनेपर संतका भी समस्त चराचर जगत्में अहैतुक प्रेम हो जाता है; क्योंकि साधन-अवस्थामें वह सबको वासुदेवस्वरूप ही समझकर अभ्यास करता है। अतएव सिद्धावस्थामें तो उसके लिये यह बात स्वभावसिद्ध होनी ही चाहिये।

× × ×

वे विश्वकी रक्षाके लिये पृथ्वीका, पृथ्वीकी रक्षाके लिये द्वीपका, द्वीपके लिये ग्रामका, ग्रामके लिये कुटुम्बका, कुटुम्ब और उपर्युक्त सबके हितके लिये अपने प्राणोंका आनन्दपूर्वक त्याग कर देते हैं। फिर धर्म, ईश्वर और समस्त विश्वके लिये त्याग करना तो उनके लिये कौन बड़ी बात है। जैसे अज्ञानी मनुष्य अपने-आपके लिये सबका त्याग कर देता है, वैसे ही संत पुरुष धर्म, ईश्वर और विश्वके लिये सब कुछ त्याग कर देते हैं; क्योंकि धर्म, ईश्वर और विश्व ही उनका आत्मा है; परंतु अज्ञानीका जैसे देहमें अहंकार और स्त्री-पुत्रादि कुटुम्बमें ममत्व होता है, वैसा संतका अहंकार और ममत्व कहीं नहीं होता। उनका सबमें हेतुरहित विशुद्ध और अत्यन्त अलौकिक अपरिमित प्रेम होता है।

× × ×

यद्यपि उन महापुरुषोंके लिये कुछ भी कर्तव्य नहीं है तथापि स्वाभाविक ही वे लोगोंपर दया कर लोकहितके लिये शास्त्रानुकूल आचरण करते हैं। उनसे शास्त्र-विपरीत आचरण होनेका तो कोई कारण ही नहीं है; परंतु शास्त्रके अनुकूल जितने कर्म होने चाहिये, उनमें स्वभावकी उपरामताके कारण अथवा शरीरका बाह्यज्ञान न रहनेके कारण या और किसी कारण कहीं कमी प्रतीत हो तो उनको इसके लिये कोई बाध्य भी नहीं कर सकता; क्योंकि वे विधि-निषेधरूप शास्त्रसे पार पहुँचे हुए हैं। उनपर 'यह ग्रहण करो' और 'यह त्याग करो'——इस प्रकारका शासन कोई भी नहीं कर सकता। उनके गुण और आचरण ही सदाचार हैं। उनकी वाणी——उपदेश-आदेश ही वेदवाणी है। फिर उनके लिये विधान करनेवाला कौन? अतएव उनके द्वारा होनेवाले आचरण सर्वथा अनुकरणीय ही हैं, तथापि जिस आचरणमें सन्देह हो, जो शास्त्रके विपरीत प्रतीत होता हो, उसके लिये या तो उन्हीं पुरुषोंसे पूछकर सन्देह मिटा लेना चाहिये अथवा उसको छोड़कर

जो शास्त्रानुकूल प्रतीत हों, उन्हींके अनुसार आचरण करना चाहिये ।

× × ×

अपनी भक्ति और महिमाके प्रचार करनेमें स्वाभाविक ही सबको संकोच होता है । इसलिये भगवान् भी अपनी भक्तिका विस्तारसे प्रचार स्वयं न करके अपने भक्तोंके द्वारा ही कराते हैं । अतएव भगवान्की भक्ति और महिमाका प्रचार विशेषतासे भगवान्के भक्तोंपर ही निर्भर करता है । इसलिये भगवान्के भक्त भगवान्से बढ़कर माने गये हैं ।

× × ×

तीर्थ सारे संसारको पवित्र करनेवाले हैं; परंतु भगवान्के भक्त तो तीर्थोंको भी पवित्र करनेवाले हैं ।

तीर्थीकुर्वन्ति तीर्थानि सुकर्मीकुर्वन्ति कर्माणि सच्छास्त्रीकुर्वन्ति शास्त्राणि । (नारद-भक्ति-सूत्र ६९)

'ऐसे भक्त तीर्थोंको सुतीर्थ, कर्मोंको सुकर्म और शास्त्रोंको सत्-शास्त्र कर देते हैं ।'

× × ×

यह सत्य है कि उत्तम पुरुषके दर्शन, स्पर्श और उनके साथ भाषणसे ही लाभ है; वे जिस वस्तुको चिन्तन कर लेते हैं, देख लेते हैं और स्पर्श कर लेते हैं, वह वस्तु बड़े ही महत्त्वकी हो जाती है । उनके चरणोंसे स्पर्श की हुई धूलि बड़े ही महत्त्वकी है, परंतु यदि वे उस धूलिको सिर चढ़ानेका निषेध करें तो उस अवस्थामें उनकी आज्ञाको अधिक महत्त्व देना चाहिये । आज्ञा मानकर चरण-धूलि सिर न चढ़ानेसे यही तो हुआ कि उससे जो लाभ होता सो नहीं होगा; परंतु यह याद रखना चाहिये कि उनके आज्ञापालनसे होनेवाला लाभ बहुत ही अधिक है ।

× × ×

यदि महापुरुषने आज्ञा दे दी कि 'मुझको प्रणाम न किया करो ।' तो उनके आज्ञानुसार प्रणाम न करनेमें बहुत लाभ है । वास्तवमें प्रणाम करना तो छूटता नहीं । शरीरसे न होकर अन्तःकरणसे प्रणाम किया जाता है । फिर यह सोचना चाहिये कि एक वस्तुके ग्रहणमें जब इतना महत्त्व है तो उसके त्यागमें कितना अधिक महत्त्व होगा । विचार करना चाहिये कि एक जगह सोना पड़ा है, रत्न पड़े हैं, वे सब बहुमूल्य हैं, इस बातको जानकर भी एक आदमी उन सोने-रत्नोंको त्याग देता है; और दूसरा उनको उठा लेता है । कीमत दोनों ही समझते हैं । अब बताइये—इन दोनोंमें कौन-सा पुरुष उच्च श्रेणीका है ? स्वर्ण और रत्न इकट्ठा करनेवाला या उनका त्यागी ? फिर महापुरुषकी चरण-धूलि तो उनकी आज्ञासे छोड़ी जा रही है । इससे उसमें तो और भी परम लाभकी बात है ।

× × ×

ऐसे महात्माओंके अमोघ सङ्ग और महती कृपासे जो व्यक्ति परमात्माके रहस्यसहित गुण और प्रभावको तत्त्वसे जान जाता है, वह स्वयं परम पवित्र होकर इस अपार संसार-सागरसे तरकर दूसरोंको भी तारनेवाला बन सकता है । इसलिये महापुरुषोंका सङ्ग अवश्यमेव करना चाहिये; क्योंकि सत्पुरुषोंका सङ्ग बड़े रहस्य और महत्त्वका विषय है । श्रद्धा और प्रेमपूर्वक सत्सङ्ग करनेवाले ही इसका कुछ महत्त्व जानते हैं । पूरा-पूरा रहस्य तो स्वयं भगवान् ही जानते हैं, जो कि भक्तोंके प्रेमके अधीन हुए उनके पीछे-पीछे फिरते हैं ।

× × ×

'त्वदीयं वस्तु गोविन्द तुभ्यमेव समर्पये ।'

(संग्रहकर्ता और प्रेषक—श्रीशालिगराम)

योगी और योग

(लेखक—पं० श्रीकमलापतिजी मिश्र)

महर्षि पतञ्जलिकृत 'योगसूत्र'का प्रथम सूत्र है—'अथ योगानुशासनम् ।' इस सूत्रसे यह स्पष्ट हो जाता है कि योगदर्शनमें उनका साक्षात् शासन नहीं, अपितु अनुशासन मात्र है। वस्तुतः योग एक अत्यन्त प्राचीन शास्त्र है। इसके आदिप्रवर्तकके विषयमें अभीतक मतैक्य नहीं हो सका है। याज्ञवल्क्य स्मृतिमें एक स्थानपर आया है—

हिरण्यगर्भो योगस्य वक्ता नान्यः पुरातनः ।

इन हिरण्यगर्भके सम्बन्धमें महाभारतमें आया है—

हिरण्यगर्भो द्युतिमान् य एतच्छन्दसि स्तुतः ।
योगैः सम्पूज्यते नित्यं स च लोके विभुः स्मृतः ॥

—अर्थात् ये द्युतिमान् हिरण्यगर्भ वही हैं, जिनकी वेदमें स्तुति की गयी है। योगी उनकी नित्य पूजा करते हैं और संसारमें उनको व्यापक समझा गया है।

इसके अनुसार शेष अन्य विद्याओंकी भाँति योगका आदिप्रवर्तक भी परमेश्वर ही है।

ऋग्वेदमें योगका स्पष्ट वर्णन तो नहीं मिलता; किंतु कई ग्रन्थोंमें अश्वोंके नियन्त्रणका प्रसङ्ग आया है। इसका सम्बन्ध योगसे ही है; क्योंकि परवर्ती भारतीय साहित्य अर्थात् उपनिषद् आदिमें इन्द्रियोंको अश्वकी संज्ञा दी गयी है और योगदर्शनमें इन्द्रिय-निग्रहपर विशेष बल दिया गया है।

जहाँतक योगके दार्शनिक पक्षका सम्बन्ध है, इसे सेश्वर सांख्यकी संज्ञा दी गयी है। यह सांख्यके पचीस तत्त्वोंके प्रति सहमति प्रकट करता हुआ एक अन्य तत्त्वके प्रति भी अपनी स्वीकृति प्रदान करता है और वह तत्त्व है—'ईश्वर'। ईश्वरके सम्बन्धमें योगदर्शनके प्रथम पादके चौबीसवें सूत्रमें पतञ्जलिने लिखा है कि—

'क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः ।'

अर्थात् जो पुरुष क्लेश, कर्म, विपाक तथा आशयसे शून्य रहता है; वह ईश्वर है। ईश्वर प्रकृतिलीन एवं मुक्त दोनों प्रकारके पुरुषोंसे भिन्न है; क्योंकि वह सर्वथा मुक्त है। वेदशास्त्रोंका प्रथम उपदेष्टा होनेके कारण वह आदि आचार्य है, आत्यन्तिक ऐश्वर्य और चरम ज्ञानका अधिष्ठाता होनेके कारण वह परमेश्वर है और नित्य होनेके कारण वह भूत, वर्तमान और भविष्य—तीनों कालोंसे अनवच्छिन्न है।

योगदर्शन ईश्वरसे अधिक चित्त, उसकी वृत्तियों एवं इन वृत्तियोंके निरोधकी व्याख्या करता है। इस अर्थमें यह 'विज्ञान' है। इससे हमें अपनी शारीरिक, मानसिक एवं आत्मिक विशुद्धताके सम्बन्धमें स्पष्ट एवं विधिवत् संकेत मिलते हैं। संसारमें सम्भवतः ऐसा कोई भी दर्शन नहीं है, जो अपने अनुयायियोंको अपने प्रतिपाद्य तत्त्व तक ले जानेके लिये इस प्रकारके सुस्पष्ट मार्गोंका निर्देश करता हो। यही कारण है कि प्रत्येक आस्तिक भारतीय दर्शनने प्राविधिक रूपसे योगको अत्यन्त मान्यता प्रदान की है। बौद्ध और जैन दर्शनोंने भी इस दर्शनके व्यवहार-पक्षके प्रति अपनी आस्था प्रकट की है।

योगदर्शनमें चित्तका अभिप्राय अन्तःकरण अर्थात् मन, बुद्धि एवं अहंकारसे है। चित्त प्राकृत है, किंतु इसमें सत्त्वकी प्रधानता है। इसके अतिरिक्त यह प्रतिक्षण परिणामशाली है। चित्तकी पाँच अवस्थाएँ होती हैं—मूढ़, क्षिप्त, विक्षिप्त, एकाग्र और निरुद्ध। मूढावस्थामें तमोगुणकी प्रधानताके कारण यह विवेकशून्य हो जाता है, क्षिप्तावस्थामें चित्तमें रजोगुणका आधिक्य रहता है और इसके परिणामस्वरूप यह चञ्चल रहता है। विक्षिप्तावस्थामें यह सत्त्व-प्रधान हो जाता है। फलतः चित्तकी मूढ तथा क्षिप्त अवस्थासे यह विशिष्ट एवं स्थिर होता है। एकाग्रावस्थामें यह किसी एक ही विषयका चिन्तन करता है; किंतु निरुद्धावस्थामें तो यह सर्वथा वृत्तिहीन हो जाता है। इस अवस्थामें समस्त संस्कारोंका लय हो जाता है। एकाग्र तथा निरुद्ध ध्यान और समाधिके लिये यही दो अवस्थाएँ उपयोगी होती हैं।

क्लिष्टाक्लिष्ट भेदसे चित्तकी वृत्तियोंके पाँच भेद होते हैं—प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निद्रा और स्मृति। प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्द—प्रमाणके ये तीन भेद हैं। किसी वस्तुके मिथ्या ज्ञानको 'विपर्यय' कहते हैं। शब्द ज्ञानसे उत्पन्न किंतु सत्यसे विरहित ज्ञानको 'विकल्प' की संज्ञा

दी गयी है। 'निद्रा'का आधार तम है। इस वृत्तिमें जाग्रत् एवं स्वप्न-वृत्तियोंका अभाव रहता है। अनुभूत विषयोंका अपरिवर्तनीय रूपसे याद आना ही 'स्मृति' है। चित्तकी इन पाँच वृत्तियोंके भीतर ही चित्तके समस्त व्यापारोंका अन्तर्भाव हो जाता है। ये वृत्तियाँ चित्तमें उत्पन्न होकर कुछ कालके उपरान्त क्षीण हो जाती हैं; किंतु उनका सर्वथा अभाव नहीं हो जाता। हमारे अवचेतनमें ये संस्कारके रूपमें बनी रहती हैं और यही संस्कार चित्तमें पुनः-पुनः वृत्तिरूपमें उत्पन्न होते रहते हैं। इस प्रकार संस्कार वृत्तिजन्य होते हैं और वृत्तियाँ संस्कारजन्य होती हैं। योगी इन स्थूल वृत्तियों और सूक्ष्म संस्कारोंका अत्यधिक निरसन करता है और इस दुष्कर कृत्यके पश्चात् ही योगकी उच्च भूमियोंमें उसकी प्रतिष्ठा होती है।

हमारा चित्त-विपर्ययरूप क्लेशोंका आवास-स्थान है। इन क्लेशोंके पाँच प्रकार हैं—अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश। जो अनित्य, अपवित्र, दुःख एवं अनात्म है, उसे नित्य, पवित्र, सुख एवं आत्मरूप मानना 'अविद्या' है। मन और बुद्धिको आत्मा मान लेना 'अस्मिता' है। सुखोत्पादक पदार्थोंके प्रति तृष्णा या लोभको 'राग'की संज्ञा दी गयी है और दुखी व्यक्तिमें प्रतिकूल साधनोंके प्रति जिस क्रोध-भावनाका उदय होता है, उसे द्वेष कहते हैं। मनुष्य अपना आत्यन्तिक नाश नहीं चाहता। वह किसी-न-किसी रूपमें बने रहना चाहता है; किंतु मृत्यु उसकी यह अभिलाषा पूर्ण नहीं होने देती। अतः वह मृत्युसे भयभीत रहता है। मृत्युके प्रति मनुष्यका यह भय 'अभिनिवेश' है।

योगदर्शनमें इन क्लेशोंसे मुक्ति-प्राप्तिका युक्तियुक्त वर्णन किया गया है। इसके लिये इसमें अष्टाङ्ग योगकी व्यवस्था है। यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, ध्यान, धारणा और समाधि—इस प्रकार योगके ये आठ अङ्ग हैं। 'यम' संयमको कहते हैं। इस संयमकी सिद्धि अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह—इन पाँच साधनोंसे होती है। शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय एवं ईश्वर-प्रणिधान—ये 'नियम'के पाँच अङ्ग हैं। 'हठयोग-प्रदीपिका' एवं कुछ अन्य ग्रन्थोंमें 'आसन'के विविध प्रकारोंका वर्णन है। आसनोंके अभ्याससे चित्तको एकाग्रता-की प्राप्ति होती है। योग-दर्शनमें प्राणायामको अत्यन्त महत्त्वपूर्ण माना गया है। श्वास-प्रश्वासके गतिविच्छेदको ही 'प्राणायाम' कहा गया है। इससे प्राणशक्तिपर साधकका अधिकार हो जाता है। बाह्य विषयोंके प्रति इन्द्रियोंकी विरक्ति ही 'प्रत्याहार' है। शरीरके किसी प्रदेश-विशेषमें या किसी बाह्य आलम्बनमें चित्तके लगा देनेको 'धारणा' कहते हैं और जब इस आलम्बनमें ध्येय वस्तुका ज्ञान निश्चित रूपसे प्रवाहित होने लगता है, तब 'ध्यान'का उदय होता है। 'सम्यगाधीयते एकाग्रीक्रियते विक्षेपान् परिहृत्य मनो यत्र स समाधिः' के अनुसार विक्षेपोंको दूरकर चित्तका एकाग्र होना ही 'समाधि' है। चित्तकी वृत्तिका ध्येयाकार बन जाना 'ध्यान' है और उस ध्येयमें वृत्तिका सर्वथा निरुद्ध हो जाना ही समाधि-लाभ है।

योगदर्शनमें समाधिके दो भेद हैं—सम्प्रज्ञात एवं असम्प्रज्ञात। सम्प्रज्ञात समाधिमें चित्तको आलम्बनकी आवश्यकता होती है। प्रारम्भमें आलम्बनके अभावमें ध्यान असम्भव हो जाता है। यह चित्तकी एकाग्रावस्था है, जिसमें चित्त किसी एक आलम्बनपर केन्द्रित हो जाता है किंतु सतत अभ्यासके पश्चात् जब चित्त निरुद्धावस्थामें पहुँच जाता है, तब साधकको असम्प्रज्ञात समाधिका लाभ होता है। इस अवस्थामें चित्तकी वृत्तियोंका आत्यन्तिक निरोध हो जाता है। वृत्तियोंके साथ-साथ इस भूमिपर आरूढ़ होनेपर संस्कारोंका भी क्षय हो जाता है और तब आत्मा अपने विशुद्ध चैतन्य रूपमें प्रतिष्ठित हो जाता है। इस उपलब्धिका नाम है—कैवल्य। दृढ़ साधना एवं अथक अध्यवसायसे ही इस स्थितिमें पहुँचना सम्भव है।

योगीको अनेक प्रकारके सिद्धि-लाभ होते हैं। सिद्धियाँ आठ प्रकारकी हैं—अणिमा, लघिमा, महिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, वशित्व, ईशित्व और यथाकामावसायिता। साधनाके मार्गमें उन सिद्धियोंकी प्राप्ति स्वाभाविक है; किंतु योगीमें इनके प्रति आकर्षणकी भावना नहीं होनी चाहिये। इनसे आकर्षित होनेपर वह पथभ्रष्ट हो जाता है। अतः समर्थ साधक इनसे उदासीन होकर अपनी साधनामें संलग्न रहता है।

योगको 'सेश्वर सांख्य' माना जाता है, किंतु यह सांख्यकी प्रतिकृति नहीं है। जहाँ सांख्य ज्ञानको मुक्तिका साधन मानता है, वहाँ योगमें मुक्तिके लिये कर्मकी व्यवस्था है। गीतामें इस अन्तरको स्पष्ट करते हुए कहा गया है—

लोकेऽस्मिन् द्विविधा निष्ठा पुरा प्रोक्ता मयानव ।
ज्ञानयोगेन सांख्यानां कर्मयोगेन योगिनाम् ।
(३ । ३)

गीतामें ही एक स्थानपर आया है—'योगः कर्मसु कौशलम्' ।

योगकी कुछ मान्यताएँ गीताकी कुछ मान्यताओंसे आश्चर्यजनक रूपसे मिलती हैं । योगदर्शनके अनुसार साधकको उसके विश्वासके अनुरूप ही फल मिलता है । यदि साधक मुक्तिमें विश्वास करता है तो उसे मुक्ति प्राप्त होती है; किंतु यदि उसका विश्वास मुक्तिमें न होकर किसी लोकविशेषमें है, तो उसे उसी लोककी प्राप्ति होती है।

गीतामें भी भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम् ।
(४ । ११ का पूर्वार्द्ध)

भारतीय दर्शनकी प्रत्येक आस्तिक शाखाने योगके व्यावहारिक पक्षको मान्यता प्रदान की है । श्वेताश्वतर एवं कठोपनिषद्में योगकी महत्ता स्वीकृत की गयी है । शाण्डिल्य, योगतत्त्व, ध्यानबिंदु, हंस, अमृतनाद, वराह, नादविन्दु और योगकुण्डली—इन उपनिषदोंमें तो योगके स्पष्ट प्रसङ्ग मिलते हैं । शैवों और शाक्तोंमें भी योगके व्यावहारिक पक्षके प्रति श्रद्धा है ।

जिन दर्शनोंकी ईश्वर या वेदके प्रति आस्था नहीं है, उनमेंसे भी कुछ योगकी उपयोगिता स्वीकार करते हैं। जैन धर्ममें योगका पर्याप्त विवेचन मिलता है। हेमचन्द्रने योगशास्त्रमें और उमास्वामीने तत्त्वार्थसूत्रमें योगपर विचार किया है।

मनन-माला

(लेखक—ब्र० श्रीमगनलाल हरिभाई व्यास)

[गताङ्क पृष्ठ १११० से आगे]

९७–प्रत्येक शरीरमें जो व्यापक चेतन तत्त्व है, वह आत्मा कहलाता है; और ब्रह्माण्डमें जो व्यापक चेतन तत्त्व है, वह परमात्मा कहलाता है । आत्मा और परमात्माके बीच कोई अन्तर नहीं है । एक और अखण्ड होनेपर भी मानो पृथक्-जैसा भासता है । जैसे आकाश एक और अखण्ड है तथापि प्रत्येक वस्तुमें आकाश पृथक्-जैसा भासता है । इसी प्रकार एक ही अखण्ड व्यापक परमात्मा प्रत्येक शरीरमें मानो पृथक्-पृथक् आत्मा हो, ऐसा भासता है । मैं आत्मा हूँ, तीनों शरीरोंसे भिन्न और असंग हूँ—इसका दृढ़ ज्ञान होनेपर भी इस आत्मचिन्तनका अभ्यास निरन्तर चालू रखना चाहिये । जैसे नदी जबतक सागरमें मिलकर सागर-रूप न हो जाय, तबतक उसका प्रवाह चालू रहता है; इसी प्रकार मैं आत्मा हूँ—यह चिन्तन, परमात्म-रूप न हो जाय, तबतक चालू रखना चाहिये । इसमें यदि विक्षेप पड़ा तो पतन हुआ समझो ।

९८–मोक्षके साधकको मौन, एकान्त-वास, मिताहार और धन तथा स्त्रीके संगका त्याग—इनका आग्रहपूर्वक सेवन करना चाहिये । सांसारिक जनका संसर्ग मनुष्यको सांसारिक बनाता है । त्यागीका संग त्यागी बनाता है। साधक जैसा संग करता है, वैसा ही बनता है । मुक्तिकी इच्छा करनेवाला साधक मुक्तका संग करे । संसारमें रहना, काम-धन्धेमें लगा रहना और मुक्तिकी इच्छा करना यह कभी बन नहीं सकता । साधकको यह सब त्याग करना चाहिये । साधन सिद्ध हो जानेके बाद संसारमें, व्यवहारमें रहें या नहीं—यह और बात है । राजा जनकका तथा दूसरे विदेही राजर्षियोंका दृष्टान्त व्यवहारमें रहनेके पक्षमें दिया जाता है । वे महापुरुष पूर्वजन्मके पक्के साधक थे, कुछ बाकी रह गया था, जिसके लिये अवतरित हुए थे । उनका उदाहरण साधारण साधकके लिये कामका नहीं है । प्रत्येक प्राणी जहाँ जाता है, वहाँ अपने साथ वह अपने चित्तके संस्कारके वातावरणको लेता जाता है । इसीसे कुछ प्राणियोंके संसर्गमें आनेपर उनके प्रति मेल नहीं खाता, कुछ प्राणियोंके प्रति प्रेम होता है और कुछके प्रति क्रोध होता है । राजसी और तामसी प्रकृतिवालेके संसर्गसे चित्तमें क्षोभ होता है । यही बात आहारकी है । अतएव कल्याणकी इच्छा करनेवालेको सात्त्विक आहार, सात्त्विक प्राणीका संसर्ग, सात्त्विक स्थानका सेवन करना चाहिये, जिसके सेवनसे चित्त शान्त रहे । जिससे चित्तमें क्षोभ हो उसका संग कभी न करे ।

९९–साधक जो कुछ करे वह पूर्ण शान्तिसे, उत्साहपूर्वक और आनन्दपूर्वक करे । जो कुछ करे वह आवेश या आग्रहसे रहित होकर, फलेच्छा और आसक्तिसे रहित होकर कर्तव्य समझकर करे । जिस प्रकार नाटकमें कोई अभिनेता अपने स्वरूपको भुलाये बिना अपने जिम्मेका अभिनय करता है, उसी

प्रकार हमारी आत्माने जो शरीररूप स्वाँग लिया है, इसको जो अभिनय करना है, उसे नाटकके पार्टके समान अभिनय करे। इस साधनको सिद्ध करनेकी एक प्रक्रिया यह है कि जो कुछ करे वह इस भावसे करे कि वह यहाँ मेहमान है, किसीके साथ कोई उसका सम्बन्ध नहीं है। आसक्ति और कर्त्तापनके अभिमानके बिना, कर्म करनेसे बन्धन नहीं होता। कर्त्तापनका अभिमान और कर्मके फलकी आसक्तिसहित इच्छा ही बन्धनकारक है। मैं कर्त्ता हूँ, मैं भोक्ता हूँ—इस प्रकारका जो 'मैं' है, वह बन्धनकारक है। मैं और मेरा-पनका त्याग ही सच्चा त्याग है और इस त्यागसे नित्य प्रसन्नता रहती है।

१००—जैसे नदी समुद्रमें मिले बिना कभी नहीं कह सकती कि 'मैं समुद्र हूँ'—उसी प्रकार साधक परमात्मामें मिले बिना नहीं कह सकता कि मैं सर्वस्वरूप—परमात्मस्वरूप हूँ। 'मैं तीनों शरीर नहीं हूँ और उन सबसे भिन्न मैं आत्मा हूँ'—इस प्रकारका अभ्यास ही उसको धीरे-धीरे परमात्मस्वरूपमें मिलाकर एक कर देता है। नदी जलरूप है, सागर जलरूप है। नदी वेगसे सागरकी ओर बहती है तब वह जिस प्रकार सागरमें मिलकर एक हो जाती है, उसी प्रकार आत्मा और परमात्माका वस्तुतः एक स्वरूप है; तथापि चिन्तन किये बिना एक नहीं हो सकता; क्योंकि दोनोंके बीचमें लिङ्गदेहरूपी वासनाकी आड़ है। यह वासना आत्मज्ञान हुए बिना निःशेषरूपसे नष्ट नहीं होती तथा सदाचार और ईश्वरकी भक्तिके बिना यह आत्मज्ञान नहीं होता।

१०१—सर्वत्र एक परमात्मा ही अनेक रूप धारण करके विलसित हो रहा है। हरि ही जगत्रूप हो रहे हैं। हरि ही जगत् हैं और जगत् हरि है। विकारी और विनाशशील शरीरोंमें जो अविकारी और अविनाशी चेतन तत्त्व है, वही परमात्मा है। साधक सबको आत्मरूप, परमात्मरूप देखे और प्राणिमात्रको परमात्मरूप जानकर अपने साधन, शक्ति और संयोगके अनुसार बिना किसी फलकी इच्छाके उनकी सेवा करे। इस प्रकारकी सेवा और स्मरण—ये दो ही साधकके काम हैं। चित्तको या तो सेवामें लगाये रक्खे या स्मरणमें। चित्त सेवा और स्मरणरहित रहेगा तो जरूर अनर्थ करेगा।

१०२—चित्तका सदा शान्त और विकारके हेतु रहते हुए भी निर्विकारी रहना—यही ज्ञान और निष्काम भक्तिका फल है। चाहे कैसा भी विकार उत्पन्न करनेवाला प्रसङ्ग प्राप्त होनेपर जिसका चित्त निर्विकार रहता है, वह मुक्त है। आत्मज्ञानके बिना यह सुलभ नहीं है। साधक जो करे वह शान्तचित्तसे, प्रसन्न मनसे, चिन्ता, उतावलापन और भयसे रहित होकर करे। जिससे चिन्ता हो, वह काम कभी न करे; जिसका परिणाम दुःखदायी हो, वह काम कभी न करे।

१०३—सुख नामका, मोक्ष नामका या आनन्द नामका कोई पदार्थ नहीं है, जो प्राप्त हो सके। यह तो ठीक है कि जो कुछ दीखता है, भासता है और अनुभवमें आता है, वह सब पञ्चतत्त्वका बना है। पञ्चतत्त्वकी परम्परा देखनेसे वह परमात्मासे ही उत्पन्न हुआ दीखता है। जिससे जो पैदा होता है, वह उसका स्वरूप होता है। इसलिये जो कुछ दीखता है या अनुभवमें आता है, उसको पहले तो पञ्चभूतात्मक जाने, पश्चात् पञ्चभूत परमात्मस्वरूप हैं, यह निश्चय करके सारा दृश्यमान जगत् परमात्मस्वरूप ही है—यह निश्चय करे। इसमें नाम और रूपको कल्पित, मिथ्या और नाशवान् समझे और जो तत्त्व नामरूपके स्वरूपमें दीखता है, उस तत्त्वको परमात्मा जाने। अग्नि जैसे लकड़ीके रूपमें दीखती है, सोना गहनेके रूपमें दीखता है, जल बुद्बुदके रूपमें दीखता है, उसी प्रकार परमात्मा ही जगत्-रूपमें दीखता है। अतएव 'मैं'के सहित सब कुछ हरिरूप है, 'मैं'के सहित सब परमात्मरूप है—यह अभ्यास करे। जो वास्तविक है और शास्त्रका निष्पक्ष अन्तिम निश्चय है। परमार्थ-पथका कोई भी साधन करनेसे ज्ञान और वैराग्य प्रकट होंगे, वे यदि निष्काम और मोक्षके हेतु होंगे तो। विषयोंमें सुख-बुद्धि जैसे-जैसे घटती है और संसारसे अरुचि होती है, वैसे-वैसे जानना चाहिये कि साधना सफल हो रही है। इसके लिये खूब आदरपूर्वक लगा रहे। और समय आनेपर जैसे अपने आप नदी समुद्रमें मिलकर समुद्ररूप हो जाती है, उसी प्रकार आत्मा परमात्मामें मिलकर परमात्मारूप हो जाता है।

१०४—जबतक शरीर और जगत्का भान होता है, तबतक नीचे लिखे अनुसार अभ्यास अवश्य करे।

(१) प्रणवका या परमात्माके किसी भी नामका नित्य जप अवश्य करे। (२) मैं शरीर, इन्द्रिय, मन या बुद्धि नहीं हूँ, बल्कि मैं आत्मा हूँ, सबका साक्षी हूँ। सबसे असङ्ग, अविकारी और अविनाशी आत्मा हूँ—इस प्रकार सदा चिन्तन करे। (३) देव, द्विज, गुरु और ज्ञानी पुरुषका

आदर-सत्कार और सेवा करे। पवित्र रहे। मनके विचार, वाणी और आचरणको एक रूप रक्खे। ब्रह्मचर्य-पालन करे। किसीको दुःख हो, ऐसा काम कभी न करे। (४) सत्य और प्रिय वचन बोले। (५) सदा मनको शान्त और प्रसन्न रक्खे। जो करे, जो बोले, वह प्रसन्न और शान्त मनसे करे और बोले। घबराहट, क्लेश और विवादका पूर्ण त्याग करे। सदा सब अवस्थाओंमें और सब संयोगोंमें जिस प्रकार मन प्रसन्न रहे, उस प्रकार बर्ताव करे। जिसका मन सदा प्रसन्न रहता है, जिसका मन चाहे कैसा ही प्रलोभन आनेपर भी विकारके वश नहीं होता, वह सदा मुक्त ही है।

१०५—भगवान्‌की मूर्त्ति या चित्रकी पूजा साधकके लिये बहुत उपयोगी है। जबतक शरीर जीवित है, तबतक थोड़े-बहुत प्रमाणमें देहाध्यास रहता ही है, और जबतक देहाध्यास रहता है, तबतक सगुण उपासना बहुत सुलभ होती है। परमात्मा सगुण भी है और निर्गुण भी है। साकार भी है और निराकार भी है। जबतक देहाभिमान पूर्णरूपसे चला न जाय और जबतक आशा और इच्छाका पूर्ण त्याग न हो जाय, तबतक सगुण उपासना करे। सगुण उपासनामें अद्भुत शक्ति है। उसमें उपासकको गिरनेका तो भय ही नहीं होता। केवल उसे सर्वभावसे, पूर्ण श्रद्धासे परमात्माकी शरण लेनी पड़ती है। उसका इतना ही काम होता है, बाकी सब कुछ प्रभु करते हैं। उसकी सारी सँभाल परमात्मा रखते हैं। परमात्माकी अनन्य शरण लेनेवाला परमात्माकी उपासना सकाम भावसे करे तो भी बन्धन नहीं होता। उसे किसी-न-किसी प्रकार परमात्माकी भक्ति करनी चाहिये।

सकाम भक्ति भी करते रहनेसे धीरे-धीरे वह भक्ति निष्काम हो जाती है, और इस रीतिसे भी भक्तिको चालू रखनेसे वह अपने आप निर्गुण-निराकारमें पर्यवसित हो जाती है। अतएव सगुण उपासना, सकाम हो या निष्काम हो, उसके करनेमें कोई जोखिम नहीं है। इसमें गिरनेका कोई भय नहीं है, उसकी सारी सँभाल भगवान् स्वयं रखते हैं। भगवान्‌के सिवा न दूसरेकी शरण ले और न दूसरेका चिन्तन करे।

१०६—यह जगत् सङ्कल्पसे बना है। जितना दृढ सङ्कल्प होता है उतना दृश्य बनता है। इसलिये साधकको सदा अच्छी भावनावाला सङ्कल्प करना चाहिये। इस दृश्य जगत्‌में सुख है ही नहीं। सुख दीखता है, पर भोगने जाओ तो परिणाममें दुःख ही जान पड़ता है। जैसे कस्तूरी—मृगकी नाभिमें कस्तूरी रहती है और उसको उसकी सुगन्ध आती है, परंतु वह जानता नहीं है कि वह सुगन्ध कहाँसे आ रही है। इस कारण वन-वन घासमें कस्तूरीकी सुगन्धकी खोज करता है कि वह कहाँसे आ रही है। पर वह उसको दूसरी जगह नहीं मिलती। वह तो उसकी नाभिमें है। वह व्यर्थ ही दूसरी जगह खोजता है और थककर दुःख भोगता है। इसी प्रकार चित्त आनन्दको ढूँढ़ता है। आनन्दस्वरूप आत्मा तो चित्तके भीतर है, इसे न जानकर जगत्‌के प्राणी-पदार्थोंमें आनन्दको खोजता है। पर दूसरी जगह है नहीं तब मिलता कहाँसे ? प्राणी-पदार्थ जो सङ्कल्पसे बने हैं, विकारी और विनाशी हैं, इनमें आनन्द होगा कहाँसे ? तथापि मायासे ऐसा लगता है कि इनमें आनन्द होगा। मायाका स्वरूप ही यह है कि नहीं होते हुए दीखता है। और दीखनेपर पास जाओ तो लुप्त हो जाता है। मायाके स्वरूपको अखा भक्तने कहा है।

अखा माया करे फजेत।
खातां खांड ने चावतां रेत ॥

मरीचिकाका जल दूरसे दीखता है, दौड़कर लेने जाओ तो कुछ न मिलेगा। अखा भक्तने सरस उपमा दी है—खानेमें खाँड़ (चीनी) सी दीखती है, पर मुँहमें डालकर चबाते समय रेत (बालू) सी लगती है, इसका नाम माया है। इसलिये इस मायिक जगत्‌के प्राणी-पदार्थोंसे सुख-आनन्द प्राप्त होनेकी तृष्णा त्यागकर आनन्दस्वरूप आत्मामें चित्तको लगावे।

जगत्‌में जितने भी प्राणी-पदार्थ हो गये हैं, सब कालके वश होकर मर गये। मुर्देको जिलानेवाला भी मर गया। सुखके लिये अनेक जीवोंने जगत्‌में मेहनत करके भी सुखके बदले दुःख पाया और वे सब अन्तमें मर गये। सुखमात्र-स्वरूप, केवल आनन्दस्वरूप, अविकारी और अविनाशी, सदा नित्यमुक्त एक आत्मा ही है। शेष सारे दृश्य मायामय, विकारी और विनाशी हैं। वह आत्मा तुम हो। इसलिये चित्तको सर्वभावसे आत्मामें जोड़ दो। सिनेमाके पर्देके ऊपर जैसे फिल्मरूपी सृष्टि दीखती है, सुननेमें आती है; परंतु वस्तुतः वहाँ पर्देके सिवा कुछ भी नहीं रहता। उसी प्रकार आत्मारूपी पर्देके ऊपर फिल्मके बिना ही परमात्माकी मायासे यह सृष्टि दीखती है। परंतु वस्तुतः आत्माके सिवा कुछ भी सत्य नहीं है। वह आत्मा तुम हो।

महासागरमें वायुके कारण जैसे अनेक लहरें उठती हुई दीख पड़ती हैं, परंतु वस्तुतः वहाँ जलके सिवा दूसरी कोई वस्तु नहीं होती। उसी प्रकार आत्मामें मायाके कारण यह विचित्र दृश्यजगत् दीखता है; परंतु वस्तुतः आत्माके सिवा कुछ भी सत्य नहीं है। वह आत्मा तुम हो। इसलिये सदा आत्मचिन्तन करो। सदा चित्तको आत्मामें जोड़ो।

१०७–देश, काल, वस्तु, व्यक्ति और क्रिया—इन पाँचोंका चित्तके ऊपर प्रभाव पड़ता है। ये पाँचों सात्त्विक, राजस और तामस—तीन गुणवाले हैं। इनमें जिसके संसर्गमें चित्त आता है, वैसा वह हो जाता है। इस प्रकार चित्त सात्त्विक, राजस और तामस प्रकृतिवाला बनता है। और जिस प्रकारके संस्कारसे युक्त होता है, वैसी ही क्रिया करता है। इसलिये चित्तको आत्मज्ञानकी इच्छावाले सात्त्विक संस्कारका सेवन करके सात्त्विक बनावे। पश्चात् उसको आत्मासे युक्त करके आत्माके संस्कारसे निर्गुण बनावे। यह संसार त्रिगुणात्मक प्रकृतिसे बना है। कर्ता-भोक्ता सब रूपोंमें प्रकृति ही अनेक आकार धारण कर रही है। आत्मा तो असङ्ग, साक्षी, नित्यमुक्त, अविकारी और अविनाशी है। इसका तुम रात-दिन चिन्तन किया करो। वह आत्मा तुम हो। तुम कर्त्ता नहीं हो, भोक्ता नहीं हो। तुम स्थूल, सूक्ष्म या कारण शरीर नहीं हो। तुम इन सबके द्रष्टा, नित्यमुक्त, अविकारी आत्मा हो—इसका बारम्बार मनन किया करो। स्व-स्वरूपको जानकर उसका हरदम मनन और निदिध्यासन किये बिना आत्म-साक्षात्कार नहीं होता, और आत्माका दर्शन हुए बिना जीवनमुक्तिका अनुभव नहीं होता तथा जन्म-मरणके चक्करसे छुटकारा नहीं मिलता। अतएव सुख या अखण्ड आनन्दके लिये दूसरी खोज न करके, सुखकी अभिलाषाकी इच्छामात्रका त्याग करके सदा आत्माराम बनकर आनन्दसे काल यापन करो। वह सच्चिदानन्दस्वरूप आत्मा तुम हो, जो घट-घटमें व्याप रहा है तथा जिसमें यह सारा दृश्यमात्र भासित हो रहा है।

१०८–इस १०८ मनिकाकी मालाका एक ही रहस्य है, और वह यह है कि आत्मा स्वयं नित्य, अविकारी और अविनाशी, व्यापक, अजर-अमर होकर भी अपनेको व्यर्थ ही विकारी और विनाशी, स्थूल शरीर मानकर दुःख और शोकसे युक्त तथा जन्म-मरण धर्मवाला मान बैठा है। जबतक वह इस अज्ञानसे छूटकर अपने स्व-स्वरूपके भानवाला तथा उसमें दृढ़ निष्ठावाला नहीं बन जाता, तबतक जन्म-मरण, जरा-व्याधिसे आत्यन्तिक छुटकारा नहीं मिल सकता और अखण्ड आनन्दकी प्राप्ति नहीं हो सकती। उस ज्ञानके लिये चित्तशुद्धिकी जरूरत है, और परमात्माकी निष्काम भक्ति किये बिना चित्तशुद्धि नहीं होती। चित्तशुद्धिके लिये शास्त्रोंमें अनेक उपाय बतलाये हैं, उनमें सात्त्विक आहार, सात्त्विक वस्तुका सेवन, शास्त्र-विचार, सद्गुरुकी सेवा, परमात्माके सगुण-साकार विग्रह या चित्रकी सेवा, परमात्माके नामका जप और कीर्तन, प्राणीमात्रको आत्मारूप जानकर उनके प्रति वैसा बर्ताव करना, सत्य और प्रिय भाषण करना, मौन, एकान्तवास, प्राणायाम तथा चित्तको सङ्कल्परहित अवस्थामें रखनेका अभ्यास, दया, मैत्री, करुणा, शान्ति, क्षमा और धैर्यपूर्वक सदा आत्मचिन्तन आदि मुख्य उपाय हैं। इनका सेवन करता रहे। इच्छामात्रका त्याग किये बिना और सगुण परमात्माकी शरण लिये बिना तथा सद्गुरुकी सेवा और शरण लिये बिना कभी ज्ञान होनेवाला नहीं है। आत्मज्ञान हुए बिना जगत्‌की सम्पत्तिसे कोटि उपाय करनेपर भी अखण्ड सुख प्राप्त नहीं होता। परोक्ष ज्ञान होनेके बाद एक क्षण भी चिन्तन न छूटे। आत्मचिन्तन छूटते ही पतन हो जाता है। भोग-अभिलाषा करते ही पतन हो जाता है। जगत्‌के विषयोंमें सुख-बुद्धि होते ही पतन होता है। जगत्‌मेंसे सुखबुद्धि धीरे-धीरे अभ्यासपूर्वक निकालकर चित्तको आत्मामें जोड़ दे, और सदा चित्तको आत्मामें ही आनन्दका अनुभव कराये। यह अभ्यास बहुत कठिन है। बहुत धैर्यके साथ, बिना उकताये करने योग्य है। इस जन्ममें या अनेक जन्मके बाद इस अभ्यासके किये बिना जीवका ताप शमन नहीं होगा।

सर्वेऽत्र सुखिनः सन्तु सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग्भवेत्॥

अर्थात् 'सब सुखी हों, सब नीरोग हों, सब कल्याणको देखें, किसीको दुःख न हो।' इस श्लोकको रोज कुछ देर बोलनेसे बहुत लाभ होगा। परमात्मा सबको सुखी रक्खे, आत्मस्वरूप करे। (समाप्त)

सिर्फ तुझे लुआठी ही तो हाथ लगेगी !

एक पौराणिक कथाके आधारपर

(लेखक—श्रीउपेन्द्रनाथजी मिश्र 'मञ्जुल' 'काव्यतीर्थ' हि०सा०भूषण)

गुलिक व्याध अपनी दुर्दान्त दस्युताके लिये अपने प्रान्तमें पूर्णतया प्रसिद्ध था। लूट-पाट और हत्या उसकी दैनिक कृति थी। उसकी जीविकाके जैसे ये ही जघन्य कर्म प्रधान अङ्ग बन चुके थे। 'लूट लाओ, कूट-खाओ' एकमात्र इसीपर उसके परिवारका जीवन आधारित था। जिस वन्य प्रान्तरमें उसका निवास था, उसके पार्श्ववर्ती जनपद उसके आतंकसे संत्रस्त थे। दैवात् एक दिन उसे कुछ प्राप्त न हो सका—कोई उसके हाथका आखेट न हो पाया। वह भूखा था, आज उसे अपनी ही नहीं, अपने भूखे परिवारकी सर्वाधिक चिन्ता थी। निराशा उसे मर्मान्तक पीड़ा पहुँचा रही थी। उसके पासके ही वन्य भागमें एक महाभाग भगवत्पूजापरायण ब्राह्मण संत रहा करते थे। दीन-दुखियों, अतिथि-अभ्यागतोंकी सेवा साक्षात् भगवत्-सेवा समझकर किया करते थे। लोग उन्हें 'पुजारी बाबा' कहते। आस-पासके ग्रामीण उनसे प्रभावित हो अन्नादि-दानसे उनके सदाव्रतमें सहायक होते। गाँव-गिराँवसे दूर उनके एकान्त विविक्त मन्दिरमें अन्न-वस्त्रादिकी कमी न थी, भण्डार भरा-पूरा रहता। निराश-हृदय दस्यु गुलिकने आज इसी मन्दिरपर धावा बोलनेका निश्चय किया। साधु-संत, ब्राह्मणोंको कभी कहीं उसने सताया हो, ऐसा दिन कोई उसे याद नहीं; किंतु '**बुभुक्षितः किं न करोति पापम् ?**' (भूखा कौन-सा पाप नहीं करता ?) विवश हो अन्नादि लूटनेके पहले वह पुजारी बाबाकी हत्याको उतारू हो गया। सोचा—बाबा मुझे पहचानता है, राजे-महाराजोंतक इसकी पहुँच है, प्रभाव है, सम्भव है, मैं पकड़ लिया जाऊँ और मुझे घोर प्राणान्त दण्ड मिले। अतः इन्हें प्राणविहीन करके ही लूटूँगा। फिर तो वह उनकी छातीपर सवार था। अँधेरी रातमें उसके हाथका तेज छूरा चमक रहा था। बाबा हँस रहे थे, उनके मुखमण्डलपर तनिक भी भयकी कालिमा दृग्गोचर नहीं हो रही थी। उनकी उस अप्रतिम सौम्य-शान्त प्रसन्न मुखमुद्रा देख हत्यारेका हृदय सहसा सहम उठा, उसके लिये यह अत्यन्त आश्चर्यकर अभूतपूर्व घटना थी। क्षणभर वह रुका, बोला, 'बाबा ! हम तो तुम्हारी हत्याको उद्यत हैं और एक तुम हो जो इस अवस्थामें भी निर्भय हँस रहे हो। तुम्हारे इस हास्यका कारण ज्ञात कर लेनेके बाद ही तुम्हारे प्राण-हरणकी चेष्टा करूँगा।' बाबा सहज भावमें बोले—'वत्स ! मेरी हत्याके लिये तेरा यह कठोर आयास क्यों ?'

गुलिक—मैं भूखा हूँ, आज मेरा समस्त परिवार क्षुधाकुल है, आज दिनभर कोई शिकार कहीं प्राप्त न हो सका, तुम्हारे मन्दिरमें अन्नोंका भरा भण्डार है, मैं तुम्हें मारकर उसे लूट ले जाना चाहता हूँ।

बाबा—(स्नेहभरे स्वरमें) 'इसमें हत्याकी कौन-सी बात है ? इच्छानुसार तू अन्नराशि ले जानेमें स्वतन्त्र और समर्थ है। नरकी सेवा भी तो नारायणकी ही सेवा है।' व्याध अविश्वस्त था, उसे भय था कि बाबाके जीवित रहते मैं अवश्य पकड़ लिया जाऊँगा, उसका वही हठ कि 'पहले हँसनेका हेतु बताओ, बादमें मैं और कुछ सोचूँगा।' बाबाका स्मित प्रश्न हुआ, 'बेटा ! तूने कभी किसीको मरते देखा है ?' मरते ? मेरे हाथों तो न जाने कितने हर रोज ही मौतके घाट उतरते हैं और मैं ही नहीं देखूँ ?' यह व्याधका उत्तर था।

बाबा—तेरे माता-पिता और बूढ़े सगे-सम्बन्धी जीवित हैं ?

गुलिक—नहीं, वे तो कब-के-कब मर चुके !

बाबा—उनके मर जानेपर तूने या तेरे परिवारके लोगोंने क्या किया ?

गुलिक—उन्हें श्मशान ले जाया गया, उनकी

मुखबत्ती की गयी—एक जलती लुकारी (लुआठी) से उनका मुख जलाया गया, श्राद्ध हुआ, फिर यथासमय उनका भोजभण्डारा किया गया। पूरी-कचौरी, मिठाइयाँ बँटीं।

बाबा—ठीक है, जैसे तेरे माता-पिता घरके अन्यान्य सगे-सरदार सभी एक दिन मौतके शिकार हो संसारसे कूच कर गये, वैसे तू भी यहाँ न रहेगा, कभी सोचा है ? मरे पीछे तुझे सिर्फ लुआठी ही तो मिलेगी और लोग तेरे नामपर पूरी-पक्कान्न भोग लगायेंगे।

गुलिक—(चिन्तित मुद्रामें अपने आप) लगता है जैसे एक-एक करके सब विदा हुए, मैं भी न रह सकूँगा, मैं भी मरूँगा, ऐसा मैंने कभी नहीं सोचा। सचमुच अन्तमें मुझे लुआठी ही तो हाथ लगेगी। बोला—'बाबा ! तुमने मेरी आँखें खोल दीं। मैं महा-महादानव हूँ, तुम तो महामानव हो, घोर पापपंकसे तुम मेरा परित्राण करो।' गुलिक व्याधकी आँखें सजल थीं, उसका सिर बाबाके चरणोंपर अवनत था, छूरा उसके हाथसे दूर जा गिरा था। पश्चात्तापके विषम-वह्नितापमें वह बेतरह दग्ध हो रहा था या सुवर्णकी तरह वह निखर रहा था। बाबाने **'अभयं ते'** (अब तू अभय है) कहकर सस्नेह उसे अङ्कमें भर लिया। बोले—'सच्चा पश्चात्ताप ही मनुष्यका सच्चा प्रायश्चित्त है, तू अब सर्वथा शुद्ध है, निष्पाप है पुत्र ! तेरा शाश्वतिक कल्याण हो।' गुलिकको गुरु मिला, वह अन्धकारसे प्रकाशमें आ गया था। अब वह **'परोपकारः पुण्याय पापाय परपीडनम्'** का सदाके लिये सत्य-साधक बन गया। सच है, **'सत्सङ्गतिः कथय किं न करोति पुंसाम्'** (साधु-समागम, कहो पुरुषोंको क्या नहीं कर देता ?)

लोग अच्छाईकी तरफ भी बढ़ रहे हैं

(लेखक—डा० श्रीरामचरणजी महेन्द्र, एम्० ए०, पी-एच्० डी०, विद्याभूषण, दर्शनकेसरी)

बी-एस्० सी० पास रिक्शाचालक

जयपुरमें मैं रिक्शामें बैठकर युनिवरसिटी जा रहा था। आकाश मेघाच्छन्न था और हवामें कुछ सुखदायक ठंड थी। मनमें बातें करनेकी इच्छा हो उठी। रिक्शा-चालक पौशाकसे शिष्ट और सभ्य दिखायी दिया।

मैंने पूछा—'कितने दिनोंसे जयपुरमें रिक्शा चलाते हो ?'

'यही कोई दो महीनेसे।'

'यह रिक्शा तुम्हारा निजी है क्या ?'

'नो सर, आई हैव हायर्ड इट। आई पे वन एट डेली फार इट टु इट्स ऑनर।' (नहीं महाशय ! मैंने इसे भाड़ेपर ले रक्खा है, इसके मालिकको मैं इसके लिये डेढ़ रुपया रोज देता हूँ।)

उसके अंग्रेजी बोलनेपर मुझे आश्चर्य हुआ। कौतूहल बढ़ा।

मैं बोला—'अरे, तुम तो अंग्रेजी भी जानते हो। कैसे सीखी है यह भाषा ?'

वह थोड़ी देर रुका, फिर बोला—'अंग्रेजी, जी अंग्रेजी ही नहीं, और भी बहुत-सी चीजें पढ़ी हैं। फिजिक्स, मैथेमैटिक्स और कैमिस्ट्री·······एक साल नहीं, कई वर्ष पढ़ा है। सब कालेजमें रहकर नियम-पूर्वक पढ़ा है। फीसें दी हैं।'

'क्या कोई परीक्षा पास की है ?'

'जी, मैंने बीएस्-सी० की परीक्षा पास की है। दुर्भाग्यसे थर्ड डिविजनमें निकला हूँ।'

उत्तर सुनकर मुझे ऐसा लगा, जैसे बिजलीका तार ही छू गया हो।

मैं सोचने लगा, बी-एस्० सी० पास करनेपर भी रिक्शा चलाने-जैसा निम्नकोटिका कार्य ? कैसे यह युवक इस हीनकार्यसे अपने-आपको जोड़े हुए है ? मेरा मन

भानुमतीका पिटारा बना हुआ था। अनेक प्रकारके सन्देह और जिज्ञासाएँ मनमें उठ रही थीं।

'इतना पढ़-लिखकर भी रिक्शा चलाने-जैसा मजदूरी-का काम क्यों किया ? तुम्हें तो किसी भी फैक्टरीमें, दफ्तर या स्कूलमें नौकरी मिल सकती थी।'

'नौकरी····ना—करी। नौकरीसे गिरा हुआ दूसरा कार्य क्या होगा ?'

'मैं तुम्हारा मतलब नहीं समझा। कुछ स्पष्टीकरण करो भाई !'

'जी, मैंने शुरूसे ही यह संकल्प किया था कि नौकरीकी गुलामी न करूँगा। कोई स्वतन्त्र पेशा करूँगा। स्वयं अपने पाँवोंपर खड़ा रहूँगा। मैं नौकरीसे स्वतन्त्र कार्यको कहीं बेहतर समझता हूँ। मजबूत हाथ-पाँव और सुशिक्षित दिमाग मेरे पास है, फिर नौकरी करके क्यों किसी बुरे स्वभावके मालिककी अन्यायपूर्ण उक्तियाँ सहता फिरूँ ? मुझमें झूठी शान-जैसी कोई व्यर्थकी भावना-ग्रन्थि नहीं है। मैं आदमीके कर्ममार्ग और पुरुषार्थमें विश्वास करता हूँ। ईश्वरकी कृपा और प्रसन्नता प्राप्त करनेके लिये केवल इतना ही काफी नहीं कि हम सदा निष्क्रिय बैठे-बैठे केवल पूजा, स्तुति, जप, ध्यान और कीर्तन मात्र ही करके सन्तुष्ट हो जायँ। असली पूजा तब प्रारम्भ होती है, जब आदमी मजबूतीसे ईमानदारीके साथ कार्य करता है, कुविचारों और कुकर्मोंसे बचनेके लिये सत्कार्यों, या मेहनत-मजदूरीमें लगा रहता है। ईश्वर कार्योंमें है। परमात्मा हमसे पूरा और खरा काम माँगता है। अपने शुभ कार्योंसे खुद अपने चरित्रमें प्रकट करना ही ईश्वरको प्रिय है। आज जमानेकी जिम्मेदारी कार्य करनेमें है। हम खाली न बैठें, बल्कि जो मिले उसे ईमानदारीसे पूरा करें।'

उसका उत्तर सुनकर मैं चकित रह गया। सत्कर्मों-द्वारा पूजा—उसका यह आदर्श मुझे जीवनके लिये बड़ा उत्तम प्रतीत हुआ।

गुंडोंसे रक्षा करनेमें प्राणोंकी आहुति

सिलचरका एक समाचार इस प्रकार है—

गत सावन पूर्णिमाके दिन झूलन देखकर दो युवतियाँ घर वापिस आ रही थीं। सायंकालका हल्का अँधेरा था और उनका घर दूर था। पता नहीं, कबसे गुंडे उन्हें उड़ानेकी कुत्सित योजनाएँ बना रहे थे। दुर्भाग्यसे वे एक ऐसी जगह आये, जहाँ गुंडे और वे दोनों युवतियाँ ही अकेली रह गयीं। अब उनकी बड़ी ही शोचनीय हालत थी। बेचारी लज्जाशीला लड़कियाँ बड़ी विपत्तिमें फँस गयीं। उन्होंने बार-बार रक्षाके लिये ईश्वरसे प्रार्थना की।—'हे ईश्वर ! हमारे चरित्रकी रक्षा कीजिये। इन दुष्टोंसे रक्षा करनेका कोई साधन भेजिये।' वे यही स्वर मन-ही-मन बार-बार उच्चारण कर रही थीं। संकटके समय ईश्वरका नाम हमारे संकल्पबलको उठा देता है और अंदरसे एक गुप्त दैवी सहायता मिलने लगती है।

इतनेमें उन्हें एक सज्जन युवक आता दिखायी दिया। वे चिल्लायीं, 'भाई साहब, हमारी इन लम्पट आदमियोंसे रक्षा कीजिये। ये हमें परेशान कर रहे हैं। हाय ! इस मानवजातिको क्या हो गया है।'

ये जे० बी० कालेज, सिलचरके भूतपूर्व छात्र श्रीचिरंजीव सेन थे। उन्होंने अकेले होते हुए भी गुंडोंको ललकारा, जोर-जोरसे बुरी तरह लताड़ा, हाथा-पाई हुई। कुछ देर झड़प चलती रही, जिसमें उन युवतियोंने भी पत्थरोंसे दुष्टोंकी मरम्मत की। धीरे-धीरे वहाँ भीड़ एकत्रित हो गयी। इस झगड़ेमें श्रीचिरंजीव सेनके बहुत चोटें आयीं और एक हाथ भी टूट गया। पर उन्होंने दोनों युवतियोंको उनके घर पहुँचा दिया।

लेकिन गुंडे अब चिरंजीव सेनसे बदला लेनेके लिये उनके रक्तके प्यासे बन गये।

प्रतिशोध एक दुष्ट मनोविकार है। जब यह मनमें बैठता है, तब मनुष्य साक्षात् राक्षस बन जाता है। उसे अच्छा-बुरा कुछ नहीं सूझता। वह किसी-न-किसी तरह अपने विरोधीसे, चाहे वह अच्छा ही आदमी क्यों न हो, बदला लेनेकी सोचता है।

उस समय गुंडोंकी हिंसक प्रवृत्तिसे बच जानेपर भी वे दुष्ट उनके पीछे पड़े रहे। एक दिन जब वे अकेले टहल रहे थे, तो एकाएक अँधेरेमें उन्होंने उनपर हमला कर दिया। वे छुरोंसे बुरी तरह घायल हो गये। यद्यपि बहुत देरतक लात और घूँसोंसे उन्होंने दुष्टोंको न अड़ने दिया। गुंडे उन्हें घायल और बेहोश बागमें पड़ा छोड़कर लापता हो गये।

पुलिस घटनास्थलपर पहुँची। घायल सेनको तुरंत अस्पताल पहुँचाया गया। अस्पतालमें कुशल डाक्टरोंने उनकी तुरंत बड़ी सेवा और चिकित्सा की। उन्होंने नेत्र खोले। पुलिसने उनका बयान लिया। उन्हें कुछ होश आया, तो उन्होंने आक्रमण करनेवाले गुंडोंका हवाला, शक्ल-सूरत, वस्त्र इत्यादिके विषयमें बहुत कुछ बतलाया।

लेकिन हाय! डाक्टरोंकी कोशिशें फलवती न हो सकीं। सेन इतने घायल हो गये थे कि बच न सके!

उनकी अस्पतालमें ही मृत्यु हो गयी। मानवताकी रक्षामें ही उन्होंने प्राणोंकी आहुति दे दी।

बलिदानी सेनकी नश्वर देहको लेकर सिलचर-वासियोंने आत्मगौरव दिखाते हुए एक बृहत् जुलूस निकाला। उनके शवपर विभिन्न शिक्षण संस्थाओंकी ओरसे मालाएँ अर्पित की गयीं।

उच्छृङ्खलता एवं गुंडागर्दीको रोकना भी एक धार्मिक कार्य ही है। इनसे डटकर लोहा लेनेवाले भी वीर ही हैं। सत्कार्योंके लिये रचनात्मक दिशामें साहस कर सकना किन्हीं विरले ही धीर-वीर व्यक्तियोंके लिये सम्भव होता है। संकटमें दूसरेकी सहायता करना एक दैवी गुण है, जो केवल सज्जनोंमें ही पाया जाता है।

बालकका साहस

रायपुर म्युनिसिपल हायर सैकंडरी स्कूलके एक तेरह वर्षीय छात्र पवनकुमारने अपनी जान गंभीर खतरेमें डालकर एक पञ्चवर्षीय बालकको डूबनेसे बचा लिया।

बात यों हुई कि पवनकुमार पढ़कर छुट्टीके बाद थका-माँदा पैदल अपने घर लौट रहा था। वह धीरे-धीरे तालाबके किनारेसे चला जा रहा था। वहाँ प्रायः धोबी लोग कपड़े धोते हैं। उनके गधे बँधे रहते हैं और वे अपने बच्चोंको भी तालाबके एक किनारे खेलने छोड़ देते हैं। वह पाँच वर्षका बालक पानीमें कागजकी नाव चलानेका बड़ा शौकीन था। उसका बाप समीप ही बीड़ी-माचिस खरीदने गया और माँ बाहर किसी अन्य कामसे चली गयी। किसीका नियन्त्रण न देखकर बालक अपनी नाव चलाने तालाबके किनारे भाग गया। माँ-बाप न आ जायँ, इस हड़बड़ीमें वह जल्दी-जल्दी नाव तैरा रहा था कि पाँव फिसल गया। बालक पानीमें गिर पड़ा और हाथ-पाँव हिलाने लगा। पहले खूब चिल्लाया, पर पास ही कोई सहायताके लिये नहीं था। फिर क्या था, वह पानीमें डूबने-उतराने लगा। ऐसे संकटकालमें पवनकुमारकी दृष्टि डूबते हुए बालकपर पड़ी। वह स्थितिकी भयंकरताको समझ गया। यों मनुष्य अपनी प्रसिद्धि करनेके लिये कुछ तो साहस करता ही है, किंतु सराहनीय वह है, जिसने परोपकार और जन-कल्याणकी दृष्टिसे कष्ट सहने, त्याग करने और दूसरोंके प्राण बचानेमें कदम बढ़ाये हों। पवनकुमार कपड़े पहिने ही तत्काल पानीमें कूद पड़ा और अपने-आपको भयानक खतरेमें डालकर बालकको किनारे ले आया। बालक बेहोश हो गया था और उसके पेटमें कुछ जल भी भर गया था। इतनेमें बालकके माँ-बाप तथा और बहुत-से लोग एकत्रित हो गये। उसे फौरन अस्पताल पहुँचाया गया और बालकके प्राण बच गये।

स्कूलके छात्रों और अध्यापकोंने पवनकुमारको उसकी वीरताके लिये एक शील्ड प्रदान की । किसी देशकी सत्ता, सम्पदा उसकी धन-दौलत नहीं, वरं मनुष्योंकी भावनात्मक उत्कृष्टता ही होती है ।

जिस समाजमें जितने त्यागी, उदार, परमार्थी, सेवाभावी, सदाचारी और विवेकशील लोग हैं, उसे उतना ही सम्पन्न एवं समुन्नत कहना चाहिये ।

छात्रोंकी त्यागपूर्ण परोपकार वृत्ति

ऐसा ही एक समाचार मण्डलासे मिला है । श्रीमती चौबे अपने दो पुत्रों तथा एक भतीजेके साथ नर्मदामें खेराघाटपर स्नान करने गयी थीं, तो स्नान करते समय अचानक उनका पैर गहरे पानीमें फिसल गया और वे नदीकी तेज धारामें बहने लगीं । उनका सोलह वर्षीय भतीजा, अपनी बुआको बचानेके लिये नदीमें कूद पड़ा था, दुर्भाग्यसे वह भी नदीकी तेज धारामें काफी दूर-तक बह गया । हितेन्द्रसिंह ठाकुर, सुभासचन्द्र जैन और महादेवप्रसाद नामक तीन छात्र पास ही थे । इन लोगोंके जीवनको संकटमें फँसा देखकर वे तत्काल ही नदीमें कूद पड़े । अपने व्यक्तिगत जीवनको खतरेमें डालकर बड़े प्रयत्नोंसे उनको डूबनेसे बचाया । सामूहिकरूपसे कार्य करके उन्होंने परोपकारका एक शानदार उदाहरण प्रस्तुत किया; अपनी तत्काल बुद्धिका परिचय दिया और संकटकालीन परिस्थितियोंमें फँसे हुए दो व्यक्तियोंको बचाया । अपने देशकी सच्ची सम्पदा बढ़ रही है या नहीं, इसकी कसौटी यही हो सकती है कि उसके नागरिकोंमें स्वार्थपरतासे विरक्ति और त्यागपूर्ण पर-कार्योंमें प्रीति किस सीमातक बढ़ी है ।

संकटके समय धैर्यका परिचय देना मनुष्यकी पुरुषार्थशीलता है । संकटोंमें पंजेसे जान बचानेके लिये जबतक धैर्य और साहसका सहारा नहीं लिया जायगा, तबतक विपत्तियाँ सदैव हमें विचलित करनेको तैयार रहेंगी ।

बालिकाका नेत्रदान

नयी दिल्लीका एक समाचार मिला है कि बारह वर्षीया कुमारी गीता अब इस संसारमें नहीं रही, किंतु मृत्युसे पहले उसने जो दान दिया, उससे किसीके अन्धेरे जीवनमें प्रकाश होगा ।

गीताका देहान्त कुछ मास पूर्व अखिल भारतीय चिकित्साविज्ञान-संस्थानके अस्पतालमें हुआ था । प्राण त्यागनेसे पूर्व उसने अपनी माँके समक्ष इच्छा प्रकट की, 'मेरी आँखें दान कर दी जायँ ।' संस्थानके एक डाक्टरने बालिका गीताके पिता श्रीललितकुमार शर्माको पत्र लिखकर गीताके साहसकी सराहना की है । गीताकी स्मृतिको ताजा रखनेके लिये बच्चोंके वार्डकी गैलरीमें गीताका चित्र लटकाया गया है । उसके नेत्रोंके दानसे किसी अन्धेको रोशनी मिलेगी ।

रुपये-पैसेका दान तो है ही, लेकिन मरनेसे पूर्व अपने शरीरके अङ्गोंका दान दधीचिकी हड्डियोंके दान-जैसी पुण्य-परम्परा है । प्राणीमात्रकी सेवा, जबतक बने करनी चाहिये । उत्तम तो यह है कि यह नश्वर शरीर ही किसीके काममें आ जाय ।

चालीस बार रक्तदान

हैदराबादमें गुडरके एक एडवोकेट श्री एस्० वी० नरसिंहराव अभीतक चालीस बार अपना रक्तदान दे चुके हैं; लेकिन इतनेसे ही वे संतुष्ट नहीं हुए हैं । अतः अब उन्होंने अपनी वसीयतमें अपना शव ओसमानिया जनरल अस्पतालके सुपरिंटेंडेंटके नाम कर दिया है । उन्होंने यह भी कहा है कि मेरी मृत्युके बाद मेरी आँखें किसी जरूरतमन्दके लिये सुरक्षित रख ली जायँ ।

मनुष्य होकर भी जो दूसरोंका उपकार करना नहीं जानते, उन आदमियोंके जीवनको धिक्कार है । उससे अधिक उपकारी तो पशु ही हैं, जिनका चमड़ातक (मरनेपर) दूसरोंके काम आता है ।

विधवाका सर्वस्व-दान

श्रीमती चोहारियाबाई नामक एक वृद्ध विधवाने बिलासपुर जिलेमें अपने गाँव सिमनीमें लड़कियोंका एक स्कूल बनानेके लिये राज्यसरकारको अपनी सारी जायदाद दानमें दे दी है। विधवाने यह भेंट मध्य-प्रदेशके एक मन्त्रीको उस समय दी जब वह गाँवमें एक सार्वजनिक सभामें भाषण कर रहे थे। जब स्थानीय नेता उपमन्त्री महोदयका स्वागत कर रहे थे, यह विधवा मञ्चपर चढ़ गयी और पंद्रह सौ रुपये नकद तथा सात सौ रुपयेकी कीमतके अपनी भूमिके कागजात उन्हें दान दे दिये। उसने जल्दी ही पाँच सौ रुपये और देनेका वचन भी दिया। इस विधवाने उपमन्त्री महोदयसे अनुरोध किया कि स्कूलका निर्माण जल्दी होना चाहिये, जिससे वह उसे अपने जीवन-कालमें ही फलता-फूलता देख सके। उपमन्त्री महोदयने स्कूलके लिये तीन हजार रुपयेका अनुदान तत्काल ही स्वीकृत कर दिया।

इस विधवाका संयम और एक उच्च कार्यके लिये दान आज भी त्याग और बलिदानकी परम्पराको अक्षुण्ण बनाये हुए है। उसने जीवनमें व्यर्थकी विलासिता, अहंकार, स्वार्थ और दिखावेमें अपने पैसे खर्च नहीं किये। केवल उतना ही लिया, जितना उसके शरीरके निर्वाहके लिये आवश्यक था। शेष वह समाजके उपयोगी कामोंके लिये बचाती रही। जिस समाजमें हम पैदा हुए हैं, वही हमारा परिवार है। हमारा देश गरीब है। देशके ज्यादातर लोग तो गरीबीमें जियें और हम मौजसे गुलछर्रे उड़ायें, यह अन्यायपूर्ण है। नब्बे प्रतिशत भारतीय जनता जिस स्तरका जीवन व्यतीत करती है, उसी स्तरका रहन-सहन, खर्च और उपयोग हमें भी रखना चाहिये। साधु और ब्राह्मणकी—वानप्रस्थ और संन्यासकी—दान और पुण्यकी प्रचलित धर्मपरम्पराएँ इसीलिये बनायी गयी हैं कि हम उच्च सामाजिक कार्योंके लिये कुछ एकत्रित करें और फिर दान कर दें।

चपरासीकी कर्त्तव्यपरायणता

बुलन्दशहरके दुर्गाप्रसाद नामक स्कूलके एक चपरासीसे डकैतोंने उसका सब कुछ छीन लिया। अँगुलीमें फँसी सोनेकी अँगूठी जब उनसे न निकली, तब वह उसने स्वयं निकालकर दे दी—परंतु स्कूलकी सायकिल वह समयतक न दी, जबतक डकैतोंने उसे मारपीटकर बुरी तरह घायल ही न कर दिया। यह चपरासी बुलन्दशहरके 'शर्मा हायर सेकंडरी स्कूल'में नौकर था। वह सायकिलपर बैठ किसी स्कूलके कामसे जा रहा था। उसके पास कुछ नकदी भी थी। अकेला देख डकैतोंने उसे घेर लिया। चपरासीकी सब नकदी छीन ली गयी, किंतु जब वे स्कूलकी सायकिल छीनने लगे, तब उसने बड़े साहस और वीरतासे उनका मुकाबला किया। उसने उन्हें ललकारते हुए कहा, 'तुम मेरी सब निजी चीजें छीन सकते हो, परंतु स्कूलकी चीज मैं जिंदा रहते तुम्हें न दूँगा।' काफी छीनाझपटीपर भी वे उस सायकिलको न ले जा सके, कारण उसने एक पहियेकी हवा निकाल दी और कुछ स्पोक तोड़ डाले। कर्त्तव्यपालनसे ही मनुष्य बड़ा बनता है।

प्रसन्नताकी बात है कि नव-जागरण बेलामें जन-मानसका विकास सज्जनोचित सत्कर्मोंकी ओर बढ़ रहा है। त्याग, सेवा, बलिदान, साहसके ऐसे समाचार आये दिन समाचारपत्रोंमें छपते रहते हैं। इन अच्छी प्रवृत्तियोंके विकासकी जितनी प्रशंसा की जाय, उतनी ही कम है; जितनी चर्चा की जाय, उतनी ही थोड़ी है। दैवी प्रवृत्तियोंकी अभिवृद्धि ही भविष्यमें भारतको पुण्यभूमि बनायेगी।

मानसिक स्वास्थ्य

(लेखक—डॉ० श्रीकन्हैयालालजी सहल, अध्यक्ष हिंदी-संस्कृतविभाग, बी. आइ. टी. एस्. पिलानी)

आधुनिक मनोविज्ञानमें सिद्ध कर दिया है कि मानसिक स्वास्थ्य शारीरिक स्वास्थ्यकी अपेक्षा भी अधिक आवश्यक । बहुत-सी शारीरिक बीमारियाँ मानसिक कारणोंसे उत्पन्न होती हैं। अजीर्ण तथा पेट एवं आँतों-सम्बन्धी बहुतसे रोग चिन्ताजन्य होते हैं। उग्र भावावेशकी हालतमें पाचन-क्रिया अपना काम बंद कर देती है। चिन्तित रहनेवाले व्यक्ति अधिकांशमें कोष्ठबद्धताके शिकार देखे गये हैं।

यदि कोई ऐसा व्यक्ति हो, जो अपने साध्यपर पहुँच चुका हो, जहाँ जीवनकी विषम समस्याओंके साथ संघर्ष करनेके लिये कोई प्रेरणा अवशिष्ट न रह गयी हो, वहाँ बाह्य जीवन बहुत नीरस हो जायगा। यदि हम ज्ञानके उच्चतम शिखरपर पहुँच चुके हों तो फिर हम न किसी प्रकारके विचार-विमर्शोंमें लगेंगे, न किसी प्रकारके अन्वेषण अथवा अनुसन्धानमें ही प्रवृत्त होंगे। विज्ञानका अन्त हो जायगा, समस्त सृष्टि ही एक कहानीकी आवृत्तिमात्रके अतिरिक्त और कुछ न रहेगी; धर्म और कला, जिनके प्रयोगात्मक अनुभवोंसे हमें आनन्दकी उपलब्धि होती है, तब अर्थहीन व्यापारमात्र रह जायँगे। संघर्षोंसे छुटकारा पानेमें आनन्द नहीं है, आनन्द है संघर्षोंपर विजय प्राप्त करनेमें। यदि कोई मनुष्य समाजसे अलग होकर एकान्तवास करने लगे तो वह बहुत-सी सामाजिक त्रुटियोंसे बच जायगा, किंतु उसके व्यक्तित्वके विकासके लिये जिस सामाजिक साहचर्यकी आवश्यकता उसे थी, उससे वह वञ्चित ही रह जायगा, मानसिक स्वास्थ्यके दूषित होनेका कारण हमारी अयोग्यता उतनी नहीं है, जितना है जीवनके प्रति हमारा गलत दृष्टिकोण।

भय और क्रोध दो ऐसे मनोवेग हैं, जो हमारे मानसिक स्वास्थ्यको आघात पहुँचाते हैं। सुरक्षाकी भावनाको जब क्षति पहुँचती है, तभी भय उत्पन्न होता है। उदाहरणार्थ भूतके भयपर विचार करें। आत्म-विश्वासकी कमीके कारण भूतका कल्पित भय भी हमारे स्नायु-दौर्बल्यका कारण बन जाता है। उन्माद तथा हिस्टीरियाके रोग भी मानसिक अस्वास्थ्यके ही द्योतक हैं और इस मानसिक अस्वास्थ्यका मूल कारण है—शक्ति होते हुए भी अपनेको शक्तिहीन समझना। मनुष्यके लिये आवश्यक है कि वह मानसिक प्रसन्नताकी आदत डाले। इसे ही गीताकारने 'प्रसाद'के नामसे अभिहित किया है।

> प्रसादे सर्वदुःखानां हानिरस्योपजायते ।
> प्रसन्नचेतसो ह्याशु बुद्धिः पर्यवतिष्ठते ॥

बुद्धिके विचलित होनेसे ही मानसिक स्वास्थ्य दूषित होता है। और बुद्धि विचलित तभी होती है, जब मनुष्य प्रसन्नचित्त रहना बंद कर देता है। मानसिक स्वास्थ्यसे सम्बन्ध रखनेवाले बहुत-से उपयोगी सूत्र गीतामें मिल जाते हैं। आधुनिक मनोविज्ञानके प्रकाशमें इस दृष्टिसे भी गीताका अध्ययन किया जाना चाहिये।

दूसरे प्रधान मनोवेग क्रोधके कारणका उल्लेख करते हुए गीतामें कहा गया है 'कामात् क्रोधोऽभिजायते।' हमारी कामनाओंकी पूर्तिके मार्गमें जब अड़चनें उपस्थित होती हैं तो क्रोध उत्पन्न होता है। ऐसी अवस्थामें कुछ मनुष्य तो कहने लगते हैं—जब हमारे मार्गमें इतने विघ्न उपस्थित होते हैं तो इन कार्योंके करनेका फल ही क्या है? कुछ मनुष्य जीवनके प्रति बड़ा स्वस्थ दृष्टिकोण रखते हैं, कठिनाइयोंको समझनेकी चेष्टा करते हैं और तदनुकूल व्यापारमें प्रवृत्त होकर जीवनके प्रति आशावादी दृष्टिकोण बनाये रखते हैं। दूसरे प्रकारके मनुष्य वे होते हैं, जो कार्यमें अड़चनें उपस्थित होते ही क्रुद्ध होकर जमीनपर पैर पटकने लगते हैं, आकाश-पाताल एक करनेकी धमकियाँ देते हैं; किंतु इस प्रकारके मनुष्य स्वयं अपनेपर लज्जित होनेके अतिरिक्त कुछ नहीं कर पाते।

किसके जीवनमें मुश्किलें नहीं? कौन मुसीबतोंका शिकार नहीं होता? किंतु उसीका धैर्य अभिनन्दनीय है, जो मुसीबतोंपर विजय प्राप्त करता हुआ मानवताका जय-जयकार करता चलता है।

लाटरीमें जैसे किसीको एक लाख रुपये मिल जाते हैं, वैसे अकस्मात् मानसिक स्वास्थ्य प्राप्त नहीं हो जाता। मानसिक स्वास्थ्यके लिये साधना अपेक्षित है। जो मनुष्य

अनासक्त होकर जीवनमें काम करता है, उसका मानसिक स्वास्थ्य दूषित नहीं होता। एक न्यायाधीश वर्षोंतक फैसला देता रहा है। अनेक बार अपराधियोंको उसने मृत्यु-दण्ड भी दिया है। आज उसीका पुत्र विचारार्थ उपस्थित है। पुत्रका अपराध ऐसा है कि उसे मृत्यु-दण्ड मिलना चाहिये। किंतु न्यायाधीशकी विचार-धारा बदलने लगती है, वह सोचता है—मृत्यु-दण्ड कोई अच्छी वस्तु नहीं; क्योंकि इससे अपराधीका कोई भला नहीं होता। अन्य अपराधियोंको मृत्यु-दण्ड देते समय यदि न्यायाधीशके मनमें इस तरहके विचार उदित हुए होते तो हम न्यायाधीशकी प्रशंसा ही करते; किंतु आज तो पुत्र-मोहके कारण उसका मानसिक स्वास्थ्य दूषित हो गया है—इसलिये उसकी विचारधाराने भी दूसरा रूप धारण कर लिया है। महाभारतका युद्ध प्रारम्भ होनेसे पहले अनेक युद्ध अर्जुन लड़ चुका था और श्रीकृष्ण यदि उसे सम्बन्धियोंके अतिरिक्त अन्य किसी शत्रुसे युद्ध करनेको कहते तो न तो अर्जुनके हाथसे गाण्डीव छूटता, न कँपकँपी-सी पैदा होती। अर्जुन भी अपना मानसिक स्वास्थ्य खो बैठा था।

जप

[कहानी]

(लेखक—श्री'चक्र')

'जपात्सिद्धिर्जपात्सिद्धिर्जपात्सिद्धिः कलौ युगे।'

महात्माने इतना कहा और चुप हो गये। उनका स्वभाव ही बोलनेका नहीं है। धनके कृपण तो बहुत सुने-देखे; किंतु ये वाणीके कृपण हैं। पता नहीं इन्हें बोलनेमें क्या जोर लगता है। नीमके नीचे बने कच्चे चबूतरेपर गुमसुम बैठे रहेंगे या लेट जायँगे। पता नहीं नीमकी पत्तियोंमें इनके नेत्र क्या ढूँढ़ते रहते हैं।

'शीतल छाया नीमकी' सुना मैंने भी है। नीममें बहुत गुण हैं, यह भी बहुतोंसे सुना है। इतना ही नहीं, बचपनमें मैंने अपने द्वारपर बहुत बार नीमका पेड़ लगाया। उनमें लग गया एक और खूब सघन हुआ। मुझे बहुत प्रिय था वह; किंतु अब मुझे नीमसे चिढ़ हो गयी है। यह वृक्ष वर्षमें कई महीने कूड़ा किया करता है। पतझड़में पत्ते झड़ेंगे, फिर फूल, सींकें और तब निमौलियाँ। कहीं इससे कभी आसव-स्राव होने लगा तो दूरतक कड़वी गन्ध बैठने नहीं देगी।

इन साधुओंको तो सब सहनेमें कुछ मजा आता है। पत्ते झड़ें ऊपर वहाँतक तो एक बात है; किंतु पटापट निमौलियाँ कौवे खोपड़ी और शरीरपर गिरा रहे हैं और बाबाजी हैं कि इन्हें उधर ध्यान देनेकी आवश्यकता ही अनुभव नहीं होती। चुपचाप दृष्टि लगाये पत्तोंमें कुछ देखते रहेंगे। कोई आवे, कोई जाय, इनकी बलासे।

लोग आर्त हैं, संसारमें दुःख ही तो अधिक है। जहाँ हरियाली दीखती है, क्षुधातुर पशु उधर ही भागता है। सब शोक-चिन्तासे मुक्त साधुके समीप क्लेशसे निवृत्ति पानेका उपाय नहीं होगा तो कहाँ होगा ? लोग आते हैं, अपना दुःख रोने ही आते हैं। ये महाराज सुनते भी हैं या नहीं, पता नहीं; किंतु लोग तो अपनी कह ही लेते हैं। घंटों लोग बैठे रहते हैं कि ये कुछ बोलें। एक दिन, दो दिनमें कहीं एक बार इनका मुख खुलता है। कोई आवश्यक नहीं कि किसीकी ओर देखकर, किसीकी बातका उत्तर ही दें। कुछ कह देंगे दो-चार शब्द और फिर चुप। गाँवके लोगोंने इनका नाम गुमसुम बाबा ठीक ही रक्खा है।

धूलिसे लिपटा गौर वर्ण, स्थूल काया, बड़े-बड़े तनिक अरुणाई लिये नेत्र, उलझे केश, जिनमें एक तिहाई श्वेत हैं और जो शेष हैं, वे भी काले नहीं, भूरे हो गये हैं। खूब सघन दाढ़ी-मूँछसे मुखका अधिक अंश ढक गया है। कमरमें एक मैली कौपीन पड़ी है।

गाँवके लोग रोटी, दाल, छाछ, जो जीमें आया, ले आते हैं। इच्छा हुई तो खा लेंगे, न इच्छा हुई तो पड़ा रहेगा। कुत्ते या कौओंका भाग है वह। गाँवके लोग ही आस-पास सफाई कर देते हैं। एक करवा अवश्य समीप पड़ा रहता है। उसे लोग जलसे भरा रखते हैं।

दिन-रातमें एक बार उठते हैं चबूतरेसे। बड़े सबेरे, अँधेरा रहते ही उठते हैं और बच्चोंके समान भागते-दौड़ते चले जाते हैं। गाँवसे लगभग मीलभर दूर एक छोटा सरोवर है। वहीं इनका नित्यकर्म पूरा होता है। सरोवरमें डुबकी

लगाकर गीली लंगोटी ही पहने दौड़े आयेंगे और फिर चबूतरेपर जम जायँगे ।

कभी कोई भूला-भटका परमार्थका जिज्ञासु भी आ जाता है । संसारके लोगोंको वैसे ही 'नून-तेल-लकड़ी'की चिन्तासे अवकाश नहीं । पशुप्राय मनुष्य क्षुधा, शरीरके रोग और संततिसे आगे बढ़ा तो अटक गया मान-अपमानको लेकर । इस पशुताकी निद्रासे जगनेवाले थोड़े ही होते हैं; किंतु होते तो हैं ही । कभी-भी इस ग्रामीण क्षेत्रमें भी ऐसे एकाध प्रबुद्ध पहुँच जाते हैं । जो मायाकी मोहिनीको ठेंगा दिखा चुका है, उसीके समीप तो भवाटवीमें भटका पान्थ पथ पूछने पहुँचेगा ।

'जपात्सिद्धिः' ये महात्मा हैं कि पूरा श्लोक भी बोलनेका कष्ट नहीं करेंगे । कोई योग पूछे या वेदान्त, भक्ति पूछे या ध्यान—ये एक ही उत्तर जानते हैं । यही क्या कम कृपा है कि जिज्ञासु आवे तो इतना बोल देना चाहिये, यह इनकी समझमें आ गया है । अन्यथा तो ये ठहरे गुमसुम बाबा ।

× × ×

'मन तो जपमें लगता नहीं ।' एक दिन एक जिज्ञासुने इनके पैर पकड़ लिये । साधु यदि अक्खड़ होता है तो जिज्ञासुओंमें भी एक-से-एक बीहड़ निकल आते हैं । पैर खींचा, झटका, किंतु नहीं छोड़ा उसने । अब क्या कर लोगे उसका ?

'किसने कहा कि मन लगना ही चाहिये ?' अन्ततः गुमसुम बाबा बिगड़कर बोले—'मन तेरे हाथमें नहीं तो उसे लगा देनेको तुझसे कहे वह मूर्ख ! उसे लगानेका प्रयत्न ही तू कर सकता है । जीभ लगाता है ? जीभको चैनसे मत बैठने दे ! भाग जा !'

मुझे यह जिज्ञासु अच्छा लगा । शौर्य किसे अच्छा नहीं लगता । गुमसुम बाबासे भी जो इतना कहला ले सके, उसमें शौर्य नहीं है, यह कोई कैसे कह देगा । इच्छा हुई कि उससे बात की जाय । बुलानेपर वह मेरे समीप आ गया । बहुत सरल, सुप्रसन्न और भला लगा मुझे ।

'ये संत हैं । संत क्रोध नहीं करते और कभी करें भी उससे प्राणीका हित ही होता है ।' उसने कहा—'संतोंसे भय कैसा ? इनके द्वारा किसीका कोई अमङ्गल हो ही नहीं सकता ।'

'जीभको चैनसे मत बैठने दे ।' गुमसुम बाबाकी यह बात मुझे अटपटी लगी थी । 'तुम्हें चैनसे रहना है तो जीभको बेचैन बनाये रक्खो ।' यही तो इस वाक्यका दूसरा रूप हुआ ? किसी-न-किसीको बेचैन रहना चाहिये और बाबाजीको इसके लिये मिली बेचारी जीभ ।

'यही बात बूढ़े तिब्बती लामाने भी कही थी ।' वह जिज्ञासु बोला—'उसके कहनेका ढंग दूसरा था; किंतु बात यही कही उसने भी ।'

'आप तिब्बत गये थे ?' मैंने पूछा ।

'अब तिब्बत नहीं जाया जा सकता और जाया भी जाय तो चीनी सैनिकोंकी संगीनोंका आतङ्क क्या वहाँ किसीको सत्सङ्ग करने देगा ? वहाँ अब किसी सिद्ध या साधननिष्ठको पा लेना अशक्यप्राय है ।' उसने बताया—'मैं ग्रीष्ममें कुलूघाटीमें गया था । घूमनेके विचारसे आगे स्पीति तक चला गया । उस ओर तिब्बतके प्रवासी इन दिनों बहुत आ गये हैं ।'

'ॐ मणि पद्मे हुं' यह तिब्बती लामाओंका मन्त्र है । पत्थरोंपर, सींगोंपर, धातुके टुकड़ोंपर—जहाँ-तहाँ यही मन्त्र लिखा, खुदा तिब्बतमें दीखता था कुछ वर्ष पूर्व । अब जहाँ तिब्बती प्रवासी आ गये हैं, वहाँ इसे उनकी भाषामें लिखा देखा जा सकता है ।

ताम्र-गौर रंग, कपोलकी उभड़ी अस्थि, छोटे नेत्र, भ्रूपर नाम मात्रके केश, ऐसे ही दाढ़ी-मूँछके नामपर थोड़ेसे बाल, सिरके केशोंकी रंगीन ऊनके सहारे गूँथी गयी चोटी, यह वर्णाकृति तिब्बतीकी चर्चा आते ही मनमें आ जाती है । कोई लामा है तो उसके हाथमें एक चर्खी हो सकती है—आवश्यक नहीं कि सदा रहे । उसे वह प्रायः घुमाता रहेगा । उस चर्खीपर उनके मन्त्र 'ॐ मणि पद्मे हुं' की कुछ आवृत्तियाँ लिखी होती हैं । वृद्ध तिब्बतीका ललाट और मुख गहरी झुर्रियोंसे भरा होगा । पता नहीं क्यों तिब्बतके वृद्धोंके मुखपर इतनी गहरी झुर्रियाँ होती हैं, जो भारतमें बहुत ही कम देखनेमें आती हैं ।

'मुझे स्पीतिमें वह लामा मिल गया । झुर्रियोंने उसके लम्बे ताम्रमुखको भव्य बना दिया था । वह अपने हाथकी चर्खी घुमाये जा रहा था ।' उस जिज्ञासुने मुझे बतलाया—'मैंने पूछा तुम यह क्या कर रहे हो ?'

लामा बहुत कम हिंदी जानता था । लगता था कि

भारतीय लोगोंके सम्पर्कमें पहले भी रहा है; क्योंकि हिंदी समझ लेता था। अपनी टूटी भाषामें आकाशकी ओर संकेत करके बोला—'उसके लिये करता हूँ।

'उसे तुम्हारे यह करनेसे क्या लाभ ?'

'कुछ नहीं' यह हाथके संकेतसे समझाकर फिर हाथकी अंगुली अपने वक्षपर रखकर संकेत भूमिकी ओर किया गया। वह कहना चाहता था—'मैं बहुत छोटा हूँ।' कहा उसने यह—'उसके लिये जो कर सकता करता।'

'मैं क्या करूँ उसके लिये ?'

लामा एक क्षण चकित-सा देखता रह गया। उसे आशा नहीं थी कि कोई भारतीय उससे ऐसा प्रश्न करेगा। उसने हाथ जोड़े, सिर झुकाया और हाथ हिला दिया। मैं समझ गया कि वह अपना पिण्ड छुड़ानेके लिये कह रहा है—'आप बड़े हैं, प्रणम्य हैं, मैं आपको कुछ नहीं कह सकता।'

'लामाजी, ऐसा मत कीजिये! मुझे बतलाया गया है कि आपमें बहुत शक्ति है। आप हिमपात और अन्धड़को कई-कई दिनके लिये रोक सकते हैं। यह शक्ति आपने कैसे पायी ?'

लामाने आकाशकी ओर संकेत करके फिर अपनी चर्खीकी ओर संकेत कर दिया। यह क्या विश्वास करनेयोग्य बात है कि कोई केवल चर्खी घुमाते रहनेसे इतना सिद्ध हो जायगा ? अतः मैंने पूछ लिया—'केवल इसे घुमाते रहनेसे उस ऊपरवालेने आपको यह शक्ति दे दी ?'

लामाने फिर ऊपर संकेत किया, सिर झुकाया। लेकिन इसके साथ उसने अपनी जीभ भी हिलाकर दिखायी। चर्खीके साथ जीभ भी हिलायी गयी है, यह बात वह कहना चाहता था।

आपपर उसकी कृपा है। आप मुझे भी कुछ बतलाइये। मैं भी इसी प्रकारकी चर्खी ले लूँ ?'

'नहीं!' उसने हाथ हिलाकर मना किया। जीभ दिखाकर, हिलाकर उसने हाथसे संकेत किया—'जीभ हिलाना पर्याप्त है!' फिर जीभ दिखाकर बोला—'बंद नहीं!'

यह कैसे हो सकता है ? भोजन करना होगा, पानी पीना होगा, सोना होगा और लोगोंसे बोलना भी होगा।'

'खाना, पानी' लामाने संकेतसे भोजन, जल पीने, सोजानेका समर्थन कर दिया और बोला—'बोलना कम!' अर्थात् भोजन करो, पानी पीओ, सोओ और लोगोंसे कम बोलो। शेष समय जीभ हिलती रहे, यह उसने संकेतसे समझाया।

'जीभ केवल हिलाना है या कुछ बोलते रहना है ?'

'नाम' ऊपर संकेत करके बतला दिया कि उनका नाम लेते रहो।

'कौन-सा नाम ?'

'जो तुम' शेष वाक्य संकेतसे पूरा कर दिया।

'इससे मुझे आप-जैसी सिद्धि मिल जायगी ?'

'कुछ नहीं' संकेतसे कहा गया था कि यह कुछ नहीं है। 'मत' अर्थात् इसे मत चाहो। 'वह' दोनों हाथ ऊपर करके फिर उसने ऐसे बाँधे जैसे किसीको अंकमाल दे रहा हो।

'मन हमारे वशमें न सही, जीभ हमारे वशमें है।' वे जिज्ञासु महोदय जानेकी शीघ्रतामें थे। उन्होंने अपनी बात यह कहकर समाप्त कर दी—'ये महापुरुष भी यही कहते हैं कि जीभको निष्क्रिय मत रहने दो। जब भी दूसरा काम न हो, जीभ भगवन्नाम लेती रहे। इस जपसे ही सिद्धि—अभिलषितकी प्राप्ति हो जायगी।

किनारेपर—

एक दिन स्वयं ही जीवन-नौका किनारे लगा लोगे।

तब, उतरते-उतरते अनुभव करूँगा कि अमूर्त, अदृश्य बाँहोंमें सिमटा जा रहा हूँ।

और—

मेरा अविजित किंतु थकित, फिर भी पुलकित, मुँदे-नयन—मुखड़ा तेरे वक्षःस्थलसे सट जायेगा।

—बालकृष्ण बलदुवा (बी० ए०, एल्-एल्० बी०)

दक्षिण भारतकी तीर्थयात्रा

(लेखक—सेठ श्रीगोविन्ददासजी, श्रीमती रत्नकुमारी देवी, श्रीगोविन्दप्रसादजी श्रीवास्तव

[गताङ्क पृष्ठ ११४० से आगे]

श्रीतुलसीदासजी ही नहीं, हमारे सभी युगचेता संतों, भक्तों, साधकों और सत्पुरुषोंका समन्वयात्मक दृष्टिकोण रहा है और उनकी साधनाके इन प्रयत्नोंका सफलीभूत परिणाम हमारी जो वर्तमान संस्कृति है, वह इसी विचार-भूमि, इसी साधना-भूमिका सुवासित पुष्प ही तो है। इन्द्र और आदित्यसे लेकर राम, कृष्णतक और राम-कृष्णसे लेकर हनुमान् और शीतला माता तथा अन्यान्य ग्रामदेवताओंतक **'सर्वदेव नमस्कारः केशवं प्रति गच्छति।'** का यह सत्य हमारे मनश्चक्षुओंसे किसी भी युगमें तिरोहित नहीं हुआ। पुराणवक्ता व्यास, शुक, शौनक और सूतने भी विविध शक्तियोंके मध्य इस यथार्थ एक ही सत्यका प्रतिपादन किया है। जिस रक्तबीजविदारिणी और शुम्भ-निशुम्भ-संहारिणी मातृ-शक्तिने असुरोंके विनाशके लिये शस्त्र धारण किया था, उसमें समस्त देवोंकी सामर्थ्य पुञ्जीभूत हुई थी। मार्कण्डेय पुराणमें इस घटनाका निम्नलिखित वर्णन मिलता है—

ब्रह्मेशगुहविष्णूनां तथेन्द्रस्य च शक्तयः।
शरीरेभ्यो विनिष्क्रम्य तद्रूपैश्चण्डिकां ययुः॥
यस्य देवस्य यद्रूपं यथाभूषणवाहनम्।
तद्वदेव हि तच्छक्तिरसुरान् योद्धुमाययौ॥

(दुर्गा सप्तशती ८। १३-१४)

इस प्रकार अनेक पूज्य और अर्चनीय अदृष्ट शक्तियोंको एक परम शक्तिका प्रतिबिम्ब माननेकी हमारी विचारधारा उतनी ही पुरानी है, जितनी पुरानी कि इन शक्तियोंकी विविध रूपोंकी अभिव्यक्तियाँ। जड और चेतनके सहस्रों आयतनों और रूपोंमें एक सर्वव्यापी सामर्थ्यका परिचय सहस्राब्दियों पहले प्राप्त कर लिया गया था। बृहदारण्यकोपनिषद्में इस अनुभूतिका उद्घोष करते हुए कहा गया है—

स यथोर्णनाभिस्तन्तुनोच्चरेद्यथाग्नेः क्षुद्रा विस्फुलिङ्गा व्युच्चरन्त्येवमेवास्मादात्मनः सर्वे प्राणाः सर्वे लोकाः सर्वे देवाः सर्वाणि भूतानि व्युच्चरन्ति तस्योपनिषत्सत्यस्य सत्यमिति प्राणा वै सत्यं तेषामेष सत्यम्। (२। १। २०)

प्रस्तुत तीर्थ, जिसका सेवन हम आज कर रहे थे तथा हमारा इष्ट जिसके साक्षात्कारके लिये हम इतनी दूरसे आये थे, राम और शिव—इन दो देवोंके अद्वैत और सम्मिलित रूपका ही दूसरा नाम 'रामेश्वर' था।

आज हम अपने अभीष्ट इष्टके न केवल निकट थे, उसका साक्षात्कार कर रहे थे। 'कोटि जनमु लगि रगर हमारी। बरउँ संभु न तु रहउँ कुआरी॥' की साधनावाली उमाके प्राणपति शिवजीके सम्मुख हम खड़े थे। भगवान् श्रीरामके द्वारा लिङ्गरूपसे प्रतिष्ठित भूतनाथ भगवान् शंकरके दर्शन कर हम कृतकृत्य हो गये। हमारी जन्म-जन्मकी साध मानो आज सफल हुई। इस समय हमारे मानस-पटलपर औघड़दानी भगवान् शंकरकी अगणित कथाएँ उभर आयीं। अवढरढरन भोलानाथ भगवान्का भोलापन, जिसने भस्मासुरको सर्वस्व दिया और भगवान् रुद्रका वह रौद्ररूप, जिसने काम दहन किया, दृश्यवत् हमारे नेत्रोंके सामने घूमने लगा। औघड़दानी भगवान् भूतनाथके उस भोलेपनपर, जिसके कारण भस्मासुरको वर देकर स्वयं भागते फिरे, हमने हँसकर तरस खाया, वहाँ इसकी ओर 'जय सिव तीसर नयन उघारा' की कल्पनासे सहम कर 'त्राहि माम्' कर उठे। रुद्रके इस रौद्र रूपको हमने दण्डवत् प्रणाम किया और शिवके सौम्य रूपकी मंजुल मूर्ति हृदयमें धारण कर अपने निवास-स्थानपर लौट आये।

रामेश्वरम्में हमारा चार दिन रहनेका कार्यक्रम था। यहाँके धार्मिक कृत्य, दर्शन, पूजनके साथ भगवान् रामेश्वरको गङ्गाजल-समर्पणका हमारा प्रधान उद्देश्य था, जिसके कारण ही हमें रामेश्वर-दर्शन सुलभ हुए। यहाँके प्रधान कार्य गङ्गाजल-समर्पणके साथ हमारा जो कार्यक्रम था, उसके अनुसार रामेश्वरम् द्वीपके अन्य पुण्यस्थलोंका दर्शनलाभ उठाना भी हमारा अभीष्ट था। अतः हमने दिनाङ्क २३ को रामेश्वरम्के कुछ प्रमुख स्थलोंका, जिनमें यहाँसे कुछ दूर रामझरोखा नामक स्थान प्रधान रूपसे उल्लेखनीय है जाकर, दिनाङ्क २४ सितम्बरको धनुषकोटि जानेका कार्यक्रम पूरा किया।

क्वचित् ही कोई यात्री रामेश्वरम् आकर धनुषकोटि न जाता हो। कुछ लोग धनुषकोटि होकर रामेश्वरम् जाते हैं, कुछ पहले रामेश्वरम् पहुँचकर धनुषकोटि आते हैं।

प्रातःकाल साढ़े ६ बजे मीटरगेजकी रेलद्वारा हम लोग रामेश्वरम्से धनुषकोटिके लिये रवाना हुए। आधा घंटे बाद पामवनमें हमने गाड़ी बदली और धनुषकोटिकी ओर उन्मुख हुए। पामवनसे चलते ही प्राकृतिक दृश्य आरम्भ हो जाता है। रामेश्वरम् एक टापू है, चारों ओर समुद्रसे घिरा हुआ परंतु 'पामवनसे धनुषकोटि जाते हुए अनेक स्थलोंपर समुद्र दिखता है और अनेक स्थलोंपर नहीं। जहाँ समुद्र नहीं दिखता, वह स्थान राजस्थानके मरुस्थलके सदृश दिखता है और हमें भास होता है जैसे हमारी गाड़ी राजस्थानके मरुस्थलमें चल रही है; क्योंकि राजस्थानमें भी मीटरगेजकी गाड़ी चलती है। वैज्ञानिकोंका मत है कि आज जो राजस्थानका मरुस्थल है, वहाँ कभी समुद्र रहा होगा। धनुषकोटि जाते हुए इस बातकी सत्यताका अनुभव होता था। दूर-दूरतक इस बालूमें हवाने बड़े व्यवस्थित ढंगसे लहरियोंका एक जाल बना दिया था। हाँ, इन लहरोंमें कोई गति अवश्य नहीं थी। किंतु जहाँ समुद्र दिखता था, वहाँ समुद्रमें लहरें उठ-उठकर विलीन हो रही थीं। रेतकी उपर्युक्त लहरों और समुद्रकी इन लहरोंके बीच एक स्पर्द्धा-सी जान पड़ती थी। पल-पल मचलती उदधिकी उर्मियों और अचेत पड़ी रेतकी इन लहरियोंसे हमें मौनके स्वर सुनायी दिये। समुद्रकी लहरें मानो इन रेतकी लहरोंसे कह रही थीं हममें जो गति है, जीवन है, वह तुममें कहाँ? और रेतकी लहरें मानो समुद्रकी लहरोंसे कह रही थीं, हममें जो स्थायित्व है, वह तुममें कहाँ? देखो, तुम किस तरह उठ-उठकर विलीन हो रही हो। तुम्हारा जीवन कितना स्वल्पाति स्वल्प है। क्षणभंगुर! हमें देखो, न हम उठती हैं न विलीन होती हैं। समभावसे सदा एक-सी रहती हैं। सत्य है, चाहे कुछ समयके बाद बालूकी ये लहरें भी मिट जाती हों, परंतु पल-पलपर जिस प्रकार पानीकी लहरें उठ-उठकर विलीन हो रही थीं, उस प्रकार ये नहीं। हमारी दृष्टिमें दोनोंका मूल्य था। रेतकी लहरें हमें बता रही थीं कि जीवनमें सृजनके लिये समय है, कुछ अवकाश और स्थिरता है और पल-पल मचलती पानीकी लहरें हमें इसके विपरीत सचेत कर रही थीं कि हमारा यह जीवन इन लहरोंके सदृश ही सर्वथा क्षणभंगुर है। पानीके बुदबुदेके सदृश। इस स्थिरता और अस्थिरता, इस स्थायित्व और क्षणभंगुरताभरे दो विरोधी स्वरोंके सम्मिलित स्वरमें बस एक ही शब्द शब्दायमान हो रहा था, वह था प्रवेग वायुका सन-सन। यही वायु उदधिकी उर्मियोंकी तथा रेतकी इन लहरियोंकी जननी है और यही हम जीवधारियोंकी भी। जीव और मायाका जो सम्बन्ध ब्रह्मसे है, वही जड और चेतनका वायुसे। जड और चेतनका माया और जीवका अन्तर ही मानव-जीवनका रहस्य है और यही उसका तादात्म्य भी, जो पल-पल उसे सक्रिय कर सत्-पथगामी रखता है।

मीटरगेजकी गाड़ी मन्थरगतिसे चली जा रही थी। खिड़कियोंसे हम निकटवर्ती दृश्य देख रहे थे। एक चक्र वायु एक बालूके टीलेको उड़ा रही थी, वह उड़कर दूसरी जगह जम रहा था। उसे देख हमें अपने साहित्यका वह वर्णन याद आया, जिसमें पर्वतोंके सम्बन्धमें कहा गया है कि वे कभी उड़ते थे। हमारी समझमें इन बालूके उड़नेवाले टीलोंसे ही पर्वतके उड़नेकी कल्पना उठी होगी। कुछ आगे चलकर थूहरके सदृश झाड़ियाँ दिखायी दीं, जो बालू और बालूके टीलोंपर मीलों तक चली गयी थीं। और जैसा कि ऊपर कहा गया है ये झाड़ियाँ मीलोंतक चली गयी थीं। पहले तो हमने इन झाड़ियोंको इस ओरकी एक प्रकारकी थूहर समझा किंतु बादमें हमें अनन्नासके फल लटकते हुए दीख पड़े। फलसे लदी अनन्नासकी ये झाड़ियाँ इस रेतीले मैदानमें मीलोंतक अपनी छवि-छटा छिटका रही थीं। बगीचोंमें हमने अनन्नासके पौधे देखे थे। बागके ये अनन्नासके पौधे एक-एक पंक्तियोंमें लगाये जाते हैं और फुट-डेढ़ फुट ऊँचे होनेपर इनके बीचमें अनन्नास फल जाता है। अनन्नासकी इन झाड़ियोंके पौधेकी पत्तियाँ चाहे अनन्नासके बगीचोंवाले पौधोंके सदृश हों, पर ये झाड़ियाँ वैसी नहीं थीं। इन झाड़ियोंके पौधे काफी ऊँचे थे और जैसा ऊपर कहा गया है—ये झाड़ियाँ मीलोंतक चली गयी थीं। आस-पासका यह मनोरम दृश्य देखते हम लोग लगभग ग्यारह बजे धनुषकोटि पहुँच गये।

धनुषकोटिका नामकरण रामायण-कालकी एक घटनापर आधारित है। कहते हैं—राम रावणका वध कर लंकासे वापिस लौटते समय जब सेतु-स्थलमें आकर ठहरे तो विभीषणने उनसे प्रार्थना की कि 'भगवन्! ऐसी कृपा कीजिये जिससे इस देशमें शक्तिशाली लोग हमें सतानेके लिये सेतुद्वारा लंकामें प्रवेश न करें।' तब श्रीरामने अपने भारी कोदण्ड अर्थात्

धनुषकी कोटिसे उस सेतुको काटकर दोनों समुद्रोंको मिला दिया। इस प्रकार धनुष और कोटि—इन दो शब्दोंके योगसे इस स्थलका धनुषकोटि नाम हुआ।

धनुषकोटिका धार्मिक महत्त्व भी प्राचीन कालसे चला आ रहा है। महाभारत युद्धके अठारहवें दिन रात्रिमें अश्वत्थामाने शिवजीकी तपस्या कर एक चमत्कारी तलवार पायी और पाण्डवोंके डेरेमें जाकर धृष्टद्युम्न आदि सोते हुए लोगोंका वध कर दिया। इस शिशु-हत्या और सोते हुए क्षत्रियोंका वध करनेके पापसे अश्वत्थामा पीड़ित हुआ और दुखी होकर वेदव्यासकी शरणमें गया। व्यासजीका आदेश पाकर अश्वत्थामाने धनुषकोटिमें तीन दिनतक स्नान किया और समस्त पापोंके प्रभावसे मुक्त होकर शान्ति पायी। धनुषकोटिमें स्नानद्वारा पाप-परिमार्जनके ऐसे और भी अनेक वर्णन आये हैं।

आज भक्तजनोंको इस तीर्थकी धार्मिक पवित्रतामें विश्वास है। विशेषकर आषाढ़ और माघ मासमें इसका सेवन विशेष पावन माना जाता है और इन दिनों यात्री धनुषकोटिमें स्नानकर पुण्य लाभ करते हैं। सूर्य और चन्द्रग्रहणके समय यहाँ स्नान करनेसे पितृ-ऋण और देव-ऋणसे मुक्ति मिलती है। भौतिक और वैज्ञानिक प्रगतिके इस युगमें आज भी सहस्रों पर्यटक यहाँ तीर्थ-स्नान कर अपनेको धन्य मानते हैं।

धार्मिक मान्यताओंके अतिरिक्त इस स्थलका भौगोलिक महत्त्व भी है। धनुषकोटि बंगालकी खाड़ी और हिंद-महासागरके सम्मिलनका स्थल है। पौराणिक मान्यताके अनुसार यहाँ रत्नाकर और महोदधि—ये दो महासागर एक दूसरेसे मिलते हैं। महोदधिमें लहरें नहीं उठतीं, वह एकदम धीर-गम्भीर और शान्त है। रत्नाकर ऊँची-ऊँची तरंगोंसे तरङ्गायित रहता है। समुद्रके इस संगमको देख हमें गोविन्ददासद्वारा रचित भारतदर्शन कविताकी निम्न पंक्तियाँ स्मरण हो आयीं—

धनुषकोटिकी अद्भुत शोभा,
जहाँ मिले हैं दो सागर।
जागृत एक सतत लहरोंसे,
सुप्त दूसरा बिना लहर॥

लोग दोनोंके इस रूप-स्वरूप और स्वभावके कारण महोदधिको ब्राह्मण और रत्नाकरको क्षत्रिय रूपसे मानते हैं। अबतक नदियोंके संगम हमने देखे थे, समुद्रका नहीं। फिर दो विरोधी प्रवृत्तियोंका, विरोधी स्वभावोंका एक उफान और तूफान तो दूसरा एकदम शान्त, एक संघर्ष तो दूसरा समझौता, एक समस्या तो दूसरा समाधान। यह मिलन हमें एक दार्शनिक तथ्यकी ओर भी इंगित कर रहा था कि शान्तमें अशान्त, अक्रोधमें क्रोध, दयामें दुष्टता, शिष्टतामें अशिष्टता, न्यायमें अन्याय, क्षमामें अपराध, शीलमें शक्ति और नम्रतामें अभिमान सदा ही समाहित होता आया है। दो बड़ोंके मिलनकी भाँति महोदधि और रत्नाकरका यह मिलन भी, जो इसी तरहका था, कितना महान् था।

हमलोगोंने महोदधिमें स्नान किये और पूजन-आचमन कर धनुषकोटिका माहात्म्य उठाया। अपराह्नमें हम मीटर-गेजकी रेलद्वारा ही धनुषकोटिसे रामेश्वरम् लौट आये। रामेश्वरम् और धनुषकोटिके लिये पानीके जहाज जल-बोट-द्वारा भी यात्रा-व्यवस्था है।

श्रीरामेश्वरम् द्वीप होनेके कारण चारों ओर समुद्रसे घिरा हुआ है। जन-विश्वासके अनुसार यह द्वीप भगवान् विष्णुके कानके आकारका है। रामेश्वरम् नगर लम्बाईमें डेढ़ मील और चौड़ाईमें आधा मील है। इसका कुल क्षेत्रफल सवा दो मील और जनसंख्या लगभग साढ़े पाँच हजार है। पूरे द्वीपका क्षेत्रफल ३४ मील है। यह द्वीप रामनद जिलेके दक्षिण-पूर्वमें स्थित है। इसे मुख्य भूमिसे जोड़नेका प्रयत्न पहले इस्तमस पाम्बनद्वारा हुआ। १५वीं शताब्दीमें कृष्नम् नायकने एक पुल बनवाया था, जो बादमें समुद्रमें तूफान आनेसे नष्ट हो गया। वर्तमानमें, जिसका वर्णन पीछे आ चुका है, लगभग डेढ़ मील लम्बा पुल बना है जिसपर रामेश्वरम् तक रेल-यातायातकी व्यवस्था है।

जहाँ एक ओर रामेश्वरम्के धार्मिक माहात्म्यकी चर्चाओं, कथाओंसे भरे पुराणों और धर्मग्रन्थोंसे अनुप्रेरित हो यात्री यहाँ आते हैं, वहाँ दूसरी ओर श्रीरामेश्वरम्का मन्दिर अपनी विशालता, भव्यता और कलात्मकतासे लोगोंको मन्त्र-मुग्ध कर देता है। और इस दृष्टिसे वास्तवमें रामेश्वरम्का सबसे बड़ा धार्मिक आकर्षण स्वयं रामेश्वरम्-मन्दिर ही है। इसका निर्माण किसी एक समय एक व्यक्तिद्वारा नहीं हुआ। बताया जाता है, काफी समय तक यहाँ रामेश्वर-लिङ्ग स्थापित रहा और एक संन्यासी

निकटवर्ती एक झोपड़ीमें रहकर उसकी देखभाल करते रहे। ११७३ ईस्वी पूर्वमें श्रीलंकाके राजा पराक्रमबाहुने यहाँ एक मन्दिरका निर्माण करा दिया। सन् १४५० में मदुराईके एक धनिकद्वारा मन्दिरके अतिरिक्त भागमें कुछ परिवर्द्धन एवं परिवर्तन किये गये। मन्दिरकी दूसरी परिक्रमाका दक्षिणी भाग १४५० में तिरुमल्लै सेतुपति-द्वारा बनाया गया था। शेष भाग उसके पुत्रने १६५८ में पूर्ण किया। मन्दिरकी तीसरी परिक्रमा १७४० में रामलिंग सेतुपतिद्वारा बनायी गयी। इस प्रकार यह मन्दिर अनेक कालोंमें अनेक व्यक्तियोंद्वारा निर्मित हुआ। ऐतिहासिक तथ्योंके आधारपर मन्दिर ३५०से भी अधिक वर्षोंमें बनकर तैयार हुआ।

मन्दिर द्वीपके पूर्वी भागमें उभरी हुई भूमिपर स्थित है। इसका पूर्वी गोपुर १२६ फुट ऊँचा है और यह केवल ५० वर्ष पूर्व बनकर तैयार हुआ है। मन्दिरके पश्चिमी द्वारपर बना गोपुर ७८ फुट ऊँचा है और यह पूर्वी गोपुरसे अधिक पुराना है। मन्दिर बारह फुट ऊँची दीवारसे घिरा हुआ है। और इसके लगभग चारों ओर फुलवारियाँ हैं, जिन्हें 'रामेश्वरजीका नन्दनवन' कहते हैं। इन फुलवारियोंमें नाना प्रकारके पुष्प खिले रहते हैं। नन्दनवनकी सिंचाई मन्दिरके कुँओंके पानीसे ही होती है और मन्दिरमें पूजाके लिये माला और फूल यहींसे मिलते हैं।

मन्दिरकी परिक्रमाओंका धर्म और कलाकी दृष्टिसे सर्वाधिक महत्त्व है। तीसरी परिक्रमा विशेष उल्लेखनीय है। यह बहुत विशाल है और मन्दिरके प्रायः सभी प्रमुख स्थल एवं कुएँ आदि इसीके अन्तर्गत आते हैं। यह १७ फुट चौड़ी और २१०० फुट लम्बी है। नन्दीमण्डप दूसरी परिक्रमाके अन्तर्गत आता है। परिक्रमाएँ बरामदोंके रूपमें हैं और स्वच्छ हवादार विद्युतयुक्त हैं। इन परिक्रमाओंको स्थानीय भाषामें 'पुकारम्' कहते हैं।

उत्तरी फाटकके निकट मन्दिरका बिजलीघर है। मन्दिरको बिजलीका वितरण यहींसे होता है। उत्तर-पश्चिमी कोनेपर श्रीरामप्रतिष्ठाकी कारणस्वरूप प्रतिमा है और इन्हें देखनेके लिये प्रत्येक यात्रीसे दो पैसा शुल्क लिया जाता है। बगलके बरामदेमें एक बाजार है, जिसमें कौड़ियाँ, शंख, खिलौने और तस्वीरें बेची जाती हैं। उत्तर-पूर्वी कोनेके निकट एक मजबूत बन्द कोठरी है जिसमें देवी-देवताओंकी सोनेकी मूर्तियाँ सुरक्षित हैं। इनका मूल्य लगभग सत्तर हजार रुपये बताया जाता है। उत्सवमें इन मूर्तियोंको ले जानेके लिये चाँदीका रथ काममें लाया जाता है।

मन्दिरमें २२ पवित्र कुएँ हैं, जो परिक्रमाओंके मार्गमें पड़ते हैं। प्रत्येक कुएँके साथ एक-न-एक पौराणिक गाथा सम्बद्ध है। इनका जल पवित्र तथा ओषधियुक्त माना जाता है। विश्वास किया जाता है कि इनमें स्नान करनेसे अनेक रोग दूर हो जाते हैं और अनेक प्रकारके पापों एवं व्याधियोंका शमन हो जाता है। इन कुण्डोंको 'तीर्थम्' कहते हैं और स्नानके इच्छुक यात्रियोंको रस्सी और बाल्टी अपने साथ लानी पड़ती है।

मन्दिरमें तिरुकल्याणम्, महाशिवरात्रि और श्रीरामलिंग-प्रतिष्ठा—ये तीन पर्व विशेष रूपसे मनाये जाते हैं। तिरुकल्याणम् जुलाई (आषाढ़) मासमें १७ दिनतक, महाशिवरात्रि फ़रवरी मासमें १० दिनतक और श्रीरामलिंग-प्रतिष्ठा जून (ज्येष्ठ) मासमें ३ दिनतक मनायी जाती है। इन पर्वोंपर हजारोंकी संख्यामें भक्तजन एकत्रित होते हैं। वसन्तोत्सव तथा दशहरा, नवरात्रि आदि कुछ अनेक पर्व भी मनाये जाते हैं। इसके अतिरिक्त हर शुक्रवारको एक सुनहरी पालकीकी शोभा-यात्रा भी निकाली जाती है, जो मन्दिरकी तीसरी परिक्रमामें घूमकर समाप्त हो जाती है।

मन्दिरकी गरिमाका एक और पक्ष है और वह है इसका कलापक्ष-सौन्दर्य। मन्दिरमें द्राविड़ शिल्पकलाकी पराकाष्ठा देखी जा सकती है। यह पाण्ड्य शिल्पकलाका भी सुन्दर प्रतिनिधित्व करता है। द्वारों और छतोंमें लगे ४० फुट लम्बे पत्थरके टुकड़ोंका भारीपन तथा उनपर की गयी कारीगरी विशेष दर्शनीय हैं। मन्दिर-गर्भगृह रंगके सख्त चूनेके पत्थरोंसे निर्मित है। मन्दिरमें अधिकांश स्थानोंपर हाथीकी ऊँची उठी हुई सूँड, परिक्रमाओंके स्तम्भोंकी दीवारोंमें खुदे हुए पौराणिक चित्र और विशेषकर मन्दिरमें रक्खी हुई देवप्रतिमाओंमें मूर्तिकला अपने चरमोत्कर्षको पहुँच गयी है, जिनका नमूना भारतमें कम देखनेको मिलता है।

मन्दिरके प्रबन्ध-सम्बन्धी कुछ तथ्य भी ज्ञातव्य हैं।

इसके लिये ट्रस्टीमण्डल बना है। मद्रास सरकारद्वारा एक वेतन-प्राप्त ट्रस्टी मन्दिरकी सम्पत्तिकी रक्षा एवं प्रबन्धकी देखभालके लिये नियुक्त किया गया है। मन्दिरमें पूजाके लिये वैतनिक महाराष्ट्रिय ब्राह्मण नियुक्त हैं। ये लोग यात्रियोंको प्रसन्न मुद्रासे सभी बातें बतलाते हैं और आवश्यक सुविधाएँ देते हैं।

मन्दिरमें पूजनके लिये कुछ विशेष नियम निश्चित हैं। मन्दिर प्रातःकाल ५ बजे खुलता है और सायंकाल १० बजे बन्द हो जाता है। शिवलिंगकी पूजाके लिये यात्रीलोग गंगोत्तरीके गङ्गाजलके अतिरिक्त प्रयाग, हरिद्वार या किसी अन्य तीर्थसे लाया हुआ गङ्गाजल चढ़ा सकते हैं किंतु इससे पूर्व अधिकारियोंसे इसकी पवित्रताकी जाँच करा लेना आवश्यक है। वैसे अलग-अलग शुल्कोंपर अनेक प्रकारका अभिषेक मन्दिरमें उपलब्ध रहता है।

रामेश्वरम् मन्दिरकी धार्मिक गरिमा और कलात्मक सौन्दर्यका वर्णन ऊपर हो चुका है; किंतु इसके अतिरिक्त यहाँ धार्मिक महत्त्वके कुछ और स्थल भी हैं और उनमेंसे प्रत्येकके साथ एक-न-एक पौराणिक कथा या किंवदन्ती अवश्य जुड़ी है। ऐसे ही कुछ स्थलोंका वर्णन हम नीचे करेंगे। (क्रमशः)

छोटे लोगोंके बड़े कारनामे

(लेखक—श्रीदुर्गाशंकरजी त्रिवेदी)

कभी-कभी 'छोटे' कहे जानेवालोंके 'बड़े' काम देखता हूँ तो आँखोंमें वे दृश्य सदा-सदाके लिये स्थायीत्व ग्रहण कर लेते हैं। ऐसे समयमें मुझे गुरु नानकका यह कथन—'हमेशा दूबके समान छोटा और विनम्र बनकर रहना चाहिये; क्योंकि बड़े-बड़े पेड़ अक्सर सूख जाया करते हैं, परंतु दूब हमेशा हरी ही बनी रहती है।' गुरु-मन्त्र की तरह उद्‌बोधक लगता है।

इस प्रसङ्गमें 'बड़े' और 'छोटे' शब्द कुछ महत्त्व-पूर्ण हैं और वे विशेष अर्थ रखते हैं। 'बड़े'से तात्पर्य यहाँ-पर ऐसे व्यक्तियोंसे है, जो आधुनिकताकी आँखसे 'बड़े' हैं। पदका अहं है, डिग्रियोंकी भरमार है या नेतागिरीका रोब है।

'छोटे'से मतलब है—जो मामूली जिंदगी जी रहा है, सामाजिक प्राणीमात्र है। जिसके पास नेतागिरीके रोबसे लेकर पैसा, प्रतिष्ठा, पदका अहं आदि कुछ भी नहीं है। यहाँ ऐसे ही 'छोटे'से तात्पर्य है, जो आजकी फैशनकी आँखोंमें 'छोटे' हैं।

जिंदगीकी इस धमा-चौकड़ीमें आपने भी कई बड़ों-के काले कारनामे देख-देखकर मन-ही-मन उनकी हीन हरकतोंके लिये उनको 'छोटा' कहा ही होगा। किंतु ऐसे अवसर भी आये होंगे जब कि 'छोटे'के 'बड़े' काम देखे होंगे। लेकिन शायद आपने उनपर सोचा भी न हो। इस सन्दर्भमें आइये, छोटोंकी महत्ताभरे संस्मरणोंपर एक दृष्टि डालिये और सम्भव हो तो उनके 'सत्यं शिवं सुन्दरं' तत्त्वको अपने आचरणोंमें भी उतारनेका प्रयत्न कीजिये।

बीस दिन बाद पर्स मिला

विनोदकुमारी परांजपेका एक अनुभव स्वयं उनके ही शब्दोंमें सुनिये—

'मैं कानपुरसे लौटी थी। स्टेशनसे जो ताँगा किया था, पर्स उसीमें भूल गयी थी। पर्समें कन्याओंके विवाह-के लिये खरीदी दो तोलेकी ऐरिन जोड़ियाँ, २८०) रुपये नकद और भाईद्वारा दिया गया एक हजार रुपयेका त्रिअरर चैक था। मैं बड़ी परेशान रही इस पर्सको खोकर!

लगभग बीस दिन बाद जब मैं इन्दौर जा रही थी तो अचानक ही ताँगेवालेने दौड़कर मुझे पुकारा और मेरा वही पर्स मेरे हाथोंमें थमा दिया। मैं आश्चर्य और हर्षके झूलेमें झूल रही थी। मैं उसे दस रुपयेका एक नोट पुरस्कारमें देना चाहा। वह ना-ना करता रहा, बोला—'बीबीजी!

सब आपका ही तो खाते हैं । हरामकी कमाईमें कभी बरकत थोड़े ही होती है । मैं आपको रोज ढूँढ़ता रहा, पर आप आज मिल पायी हैं ।'

गाड़ी चल दी, तभी मेरे मनमें अचानक ही यह शङ्का उभरी कि कहीं अंदरका सामान तो नदारद नहीं है । मैंने झटसे उसे खोला । सब कुछ उसी तरहसे व्यवस्थित था । अब मेरी बारी थी, मन रह-रहकर मेरी हीन प्रवृत्तियोंके लिये मुझे धिक्कार रहा था !

'काश, उस 'बड़े' दिलवाले 'छोटे' आदमीका मैं तत्काल ही स्वस्थ मूल्य आँक पाती ।'

दो पैसेका स्कूल

'दो पैसेका स्कूल' शीर्षक पढ़कर आप आश्चर्यचकित रह जायँगे । लेकिन सारन जिलेके बड़ा गाँवमें जन्मे बाबा कैलाशनाथ त्यागीने यह कर दिखाया है ।

उन्होंने दो पैसेवाला सार्वजनिक तकनीकी स्कूल स्थापित करवाया है । इसमें लगभग २०० छात्र विभिन्न छोटे-छोटे उद्योगोंकी शिक्षा ग्रहण करते हैं । छात्रोंके आवास, भोजन, कपड़े आदिकी व्यवस्था भी संस्थानकी तरफसे ही होती है । श्रीत्यागीजीका स्वप्न एक हजार छात्रोंके एक साथ शिक्षणकी व्यवस्था करनेका है ।

बाबा धन-संग्रहके लिये देशभरका भ्रमण कर रहे हैं । पर लेते वे मात्र 'दो पैसे ही' हैं ।

एक पत्रकारने जब उनसे इस दो पैसेका रहस्य पूछा तो वे मुस्कराकर बोले—'मैं बूँद-बूँद जल भरे तलवा' की लोकोक्तिको साकाररूपमें लोगोंको दिखलाना चाहता हूँ ।'

देशमें कितनी ही समाज-कल्याण-प्रवृत्तियों, निर्माणाधीन योजनाओं आदिमें यह संस्मरण दीपस्तम्भका कार्य कर सकता है; क्योंकि इस तरहके भगीरथ प्रयत्नोंसे जहाँ जनतापर बोझ नहीं पड़ता है, वहाँ मात्र पैसेके दमपर बड़प्पन दिखानेवालोंमें भी कुछ त्यागकी वृत्ति जगेगी । समाज कल्याण-प्रवृत्तियोंके प्रसारणमें यह वृत्ति जाग्रत् करना भी कम बड़ा लाभ नहीं है ।

तेरह रुपयेका पोस्टल ऑर्डर

'तेरह रुपयेका पोस्टल ऑर्डर' १७ मई १९६६ के समाचारपत्रोंमें यह शीर्षक पढ़कर मैं किसी नये पोस्टल ऑर्डरके चलनेकी सूचनाका अनुमान कर बैठा था । पर जब इस समाचारको पूरा पढ़ा तो चिन्तनकी झीलमें बरबस ही कूदना पड़ा । पूरा समाचार इस प्रकार था—

नई दिल्ली—१५ मई । एक महिलाने रेलमन्त्रीको १३) रुपयेका पोस्टल ऑर्डर भेजते हुए लिखा था कि 'यह राशि उस किरायेकी है, जो उसे अतिरिक्त रूपमें रेल-विभागको देनी चाहिये थी; क्योंकि उसने पुत्रके साथ थर्ड क्लासके टिकटपर फर्स्ट क्लासमें कुछ स्टेशनोंके बीच सफर किया था । महिलाने लिखा था कि रेलविभागका राजस्व जनताका धन है, अतः यह राशि रेलके राजस्वमें जमा करनेको भेज रही हूँ ।'

यहाँ सवाल इन १३) रुपयोंका नहीं है, जो उसने भेजे थे, अपितु उस मनोधारणाका यहाँपर महत्त्व है जो उसने व्यक्त की । जबतक हम देशके नुक्सानको अपने व्यक्तिगत नुक्सानसे अधिक नहीं समझेंगे, तबतक राष्ट्रकी प्रगतिके पहियोंमें तेजी नहीं आ पायेगी ।

मित्रोंका मिलन

बात देशके विभाजनसे पूर्वकी थी । गुजरांवालामें दो पड़ोसी थे । एक हिंदू, एक मुसल्मान; पर दोनोंमें गहरी दोस्ती थी । दुर्भाग्यसे देशका विभाजन हुआ । हिंदू लुधियाना जाने लगा । चूँकि रास्तेमें लुट जानेका खतरा था, अतः उसने अपनी कुल जमा-पूँजी ५००) रुपये मुसल्मान मित्रके पास छोड़ दिये ।

साम्प्रदायिक तनाव बढ़ा और भयंकर मार-काट और खूनकी होली उस समय करीब-करीब सारे संसारने व्यथित हृदयसे देखी ।

समय सरकता गया और घटनाको १३ वर्ष हो गये । तभी अचानक मुसल्मान मित्रका खत लुधियाना हिंदू मित्रके हाथोंमें जा पहुँचता है । लिखा था, 'भई ! वाह !

तुम बड़े बेवफ़ा निकले कि खबरतक भी नहीं दी आजतक! मुश्किलसे तुम्हारा पता चल पाया है, तब जाकर यह खत लिख रहा हूँ। आओ मिल भी लेंगे और अपनी अमानत भी वापस लेते जाना।'

हिंदू मित्र गया। रुपये भी ले आया और अजीज मित्रसे भी मिल आया। लेकिन भावात्मक एकताकी एक ऐसी गाँठ भी जोड़ आया था, जो हिंदू-मुस्लिम-भेदसे परे इन्सानियतकी ही इज्जत करती है।

टैक्सी-ड्राइवरका उत्तर

एक भारतीय नेता किसी कामसे इंग्लैंड गये थे। वहाँ-पर उन दिनों पैट्रोलपर कण्ट्रोल था। बिना कूपनके पैट्रोल वहाँपर नहीं मिल पाता था। हमारे यहाँकी तरहसे ब्लैकमें मिलना तो कतई सम्भव ही नहीं था।

उनको पैट्रोलके कूपन मिल गये, तो वे टैक्सी करके अपना कामधाम करते रहे। इस प्रकार उन्हें ६-७ दिनतक टैक्सीसे यात्रा करते रहना पड़ा। जब अपना वहाँका काम वे समाप्त कर चुके तो उनके पास पैट्रोलके काफी कूपन बचे हुए थे।

टैक्सीवालेने उनके साथ पर्याप्त शालीनतापूर्ण व्यवहार किया था। वे मन-ही-मन उसके व्यवहारसे बहुत प्रसन्न भी थे। इसलिये वे कूपन उन्होंने उसे देकर कहा—'लो मिस्टर! इन कूपनोंको अपने पास रख लो। ये तुम्हारे लिये पर्याप्त लाभदायक रहेंगे। आजकल तो यह सब दुर्लभ-सा ही है।'

इतना सुनना था कि टैक्सी-ड्राइवरकी आँखें चढ़ गयीं, मुँह बिगड़ गया। क्रुद्ध होकर वह चीख-सा उठा—'श्रीमान्! क्या आपने मुझे इतना नीच समझ रक्खा है, जो मैं चोरीके कूपन ले लूँ। मुझे नियमानुसार जितने कूपन मिलते हैं, मैं उनसे जरा भी ज्यादा नहीं ले सकता हूँ। राष्ट्रके साथ इतना बड़ा धोखा मैं कैसे कर सकता हूँ। क्या आपके देशमें इस तरहकी धोखादेहीके प्रति जरा भी बुराई नहीं समझी जाती?'

अब नेताजीके होश उड़ गये। उन्हें अपनी भूल-का अनुभव हुआ। उन्होंने टैक्सी-ड्राइवरसे क्षमा-याचना की। टैक्सी ड्राइवरने चटसे कह दिया, 'आप इन कूपनोंको वापस सरकारको लौटा दें। यही आपके लिये वास्तविक क्षमा होगी।'

उन्होंने वे कूपन वापस कर दिये।

बातों-ही-बातोंमें टैक्सी-ड्राइवरने बतलाया कि मैं पिछले माह ५-६ दिन बीमारीसे पीड़ित रहा। इसलिये मैं टैक्सी नहीं चला पाया। अतः जब मैं अगले माहके कूपन लेने गया तो मैंने शेष कूपन बतलाकर अगले कोटेमेंसे कटवा दिये। वह कह रहा था—'भाई साहब, हमारे राष्ट्रको ऊँचा उठाने, चरित्रको उज्ज्वल करने या गिरानेकी जवाब-दारी हमपर ही तो है। हम चाहें तो इसे गिरायें और हम चाहें तो उसे ऊँचा उठायें।'

कहनेको तो ये छोटी बातें नजर आती हैं; परंतु इनके माध्यमसे ही राष्ट्रका चरित्र उभरता है, उसमें नवीनतापूर्ण निखार आता है, जो राष्ट्रीय चरित्रकी नींवोंको अहर्निश सुदृढ़ करता ही रहता है।

ये संस्मरण न केवल सत्य संस्मरण हैं, बल्कि इनमें सन्निहित सुगन्ध अनायास ही 'छोटों'को 'बड़ों'की श्रेणीमें रख देती है। घने अन्धकारमें भी ये प्रकाशकी किरणोंकी तरह चमकते रहते हैं। और ऐसी ही घटनाओंको देखकर मैं गुजरातीके प्रसिद्ध साहित्यसेवी श्रीउमाशंकर जोशीकी इस सूक्तिपर निगाहें गड़ा देता हूँ—

'बड़ोंकी अल्पता बहुत देखी, छोटोंकी महत्ता देख-देखकर जीता हूँ।'

सचमुच ही छोटोंके इन महत्ताभरे क्षणोंमें ही समाजका कल्याण निहित है, राष्ट्रकी प्रगतिके पहियोंमें इनका जीवन-तत्त्व ही तेजी ला सकता है। आवश्यकता है हम भी इनमें सन्निहित जीवनसंजीवनीको व्यवहारमें उतारें।

यद्यपि उपर्युक्त घटनाएँ देखनेमें छोटी हैं तथापि यदि हम इनपर मनन करें और इनमें निहित शिक्षाओंको अपने जीवनमें उतारनेका प्रयास करें तो ये हमारे अन्धकाराच्छन्न जीवनको प्रकाशमय बना सकती हैं और हमें उन ऊँचाइयोंपर पहुँचा सकती हैं, जिनकी हमने कल्पना भी नहीं की होगी।

मनुष्यकी विनाशकी ओर प्रगति और उससे बचनेके उपाय

जैसे सारे शरीरके सभी अङ्गोंमें एक ही आत्मा व्याप्त है। किसी भी अङ्गपर आघात होता है तो हम उसे अपने ऊपर आघात हुआ अनुभव करते हैं, और स्वाभाविक ही सभी अङ्ग एक दूसरे अङ्गकी रक्षा तथा कल्याण-साधनामें लगे रहते हैं, वैसे ही समस्त समष्टि जगत्‌में भी एक ही आत्मा व्याप्त है—इस सत्यका अनुभव हो जानेपर ही मानवकी मानवता पूर्णताको प्राप्त होती है। यही मानव-जीवनकी सफलता है। ऐसा हो जानेपर फिर कोई भी मानव किसी भी प्राणीका कभी बुरा नहीं चाहेगा, कभी किसीका अकल्याण नहीं करना चाहेगा, सबकी रक्षा करेगा और सबके कल्याण-साधनमें लगा रहेगा। भूल या प्रमादवश कभी कुछ अनिष्ट कार्य हो जायगा तो उसे वैसे ही दुःख होगा, जैसे भूलसे अपने ही द्वारा अपने किसी अङ्गपर चोट लग जानेसे हमें होता है। यह दूसरी बात है कि कभी किसी अङ्गमें अंदर सड़न पैदा होनेपर शरीरमें हम जैसे आपरेशन कराते हैं और उस अङ्गको कटवाकर सारे शरीरको विषके प्रभावसे बचा लेते हैं—ऐसे ही शुद्ध नीयत तथा कल्याणकी भावनासे कभी समष्टि जगत्‌में भी ऐसा कार्य करना पड़ता है जो देखनेमें कठोर होता है, पर वास्तवमें वहाँ उद्देश्य विशुद्ध कल्याण-साधन ही होता है।

मनुष्यको अपने जीवनमें इसी लक्ष्यको सामने रखकर चलना चाहिये। यह निश्चय रखना चाहिये कि जिसके परिणाममें दूसरोंका अहित या अकल्याण होगा, उससे हमारा हित या कल्याण कभी नहीं होगा एवं जिससे परिणाममें दूसरोंका हित या कल्याण होगा, उससे हमारा अहित या अकल्याण कभी नहीं होगा। यही धर्मका स्वरूप है। यही पाप और पुण्यकी परिभाषा है। दूसरोंका अकल्याण ही पाप है और दूसरोंका कल्याण ही पुण्य है; क्योंकि वास्तवमें समष्टि दृष्टिसे हम सब एक ही हैं। शरीरके किसी एक अङ्गके अहितसे हमारा ही अहित होता है और हितसे हमारा ही हित होता है—यही सत्य सिद्धान्त है।

मनुष्यका 'स्व' जब समष्टिसे निकलकर केवल व्यष्टिमें ही आ जाता है, तब उसका स्वार्थ (स्व-अर्थ) भी अपने व्यक्तित्वकी सीमामें ही संकुचित हो जाता है, फिर वह केवल अपनेके लिये ही सुख चाहता है, उसीके लिये सचेष्ट होता है, उसीके प्रयत्नमें लगा रहता है। और जितना ही वह इस कुमार्गमें आगे बढ़ता है, उतनी ही उसकी विषयासक्ति तथा तज्जनित भोग-कामना बढ़ती रहती है। कामनापर जहाँ चोट लगती है, वहाँ क्रोधका उदय होता है और कामना जहाँ सफल होती है, वहाँ लोभ जाग उठता है। क्रोध और लोभ—दोनों ही मनुष्यकी बुद्धिका नाश कर देते हैं; फिर उसकी बुद्धिमें जो कुछ निश्चय होता है, सब जगत्‌के हितके विपरीत होता है और फलतः उससे उसका अपना अहित—विनाश तो निश्चित ही है—

'बुद्धिनाशात् प्रणश्यति।'

इसी बुद्धिनाशकी स्थितिमें मनुष्य अनुचित तथा अकल्याणकारी साधनोंद्वारा सुखसामग्रीका संग्रह करना चाहता है—हिंसा, अधर्म युद्ध, डकैती, चोरी, छल, व्यभिचार, भ्रष्टाचार, अनाचार, प्रतिहिंसा, द्रोह, वैर, मद आदि दुर्गुण-दुराचार उसके जीवनके स्वभाव या स्वरूप बन जाते हैं। वह मनुष्यके रूपमें ही हिंसक पशु, असुर, पिशाच, राक्षस बन जाता है और अपने कुकृत्योंद्वारा अपना तथा जगत्‌के प्राणियोंका अहित करता हुआ—अपने भविष्यको घोर पतन, दीर्घकालीन संकट, यातना, पीड़ा और विविध भयानक ताप-संतापोंका क्रीड़ा-क्षेत्र बना लेता है।

आजका मानव दुर्भाग्यवश इसी पतनकी ओर अग्रसर है। वह विश्वप्राणीकी सेवा, संयम, नियम, धैर्य, मन-इन्द्रियके निग्रह, अपरिग्रह, त्याग, प्रेम, उदारता, मर्यादा, शील, परदुःखकातरता, पर-हित-साधन, शान्ति, भगवद्विश्वास, विनय, विचारशीलता, शास्त्र-मर्यादा, परलोककी गतिका विचार आदिको भूलकर अत्यन्त संकुचित स्वार्थग्रस्त, असंयमी, उच्छृङ्खल, अधीर, मन-इन्द्रियोंका गुलाम, संग्रह-परायण, भोग-जीवन, घृणापरायण, निज सुखाकाङ्क्षी, कृपण, मर्यादाशून्य, शीलरहित, पर-सुख-कातर, पर-अहितपरायण, नित्य घोर अशान्त, उत्तेजित, आवेशमय, भगवद्विश्वास-रहित, अभिमानी, अविवेकी, शास्त्रमर्यादानाशक और केवल इहलोककी मान्यतावाला होकर जीवनकालमें भीषण चिन्ताओंकी अग्निसे जलता हुआ असफलजीवन ही मर जाता है। मरनेके बाद तो दुर्गति—घोर नरकोंकी प्राप्ति होती ही है। मानव-जीवनका यह परिणाम अत्यन्त ही शोचनीय है।

आज समष्टि और व्यष्टि-जगत्‌में जो कुछ हो रहा है, जो कुछ किया-करवाया जा रहा है, वह इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। उदाहरणार्थ विज्ञान विश्वप्राणियोंके ध्वंसकी सामग्रीके आविष्कारमें लगा है, एक देश दूसरे देशको हड़प जाना चाहता है, एक वाद दूसरे वादको मिटा देना चाहता है, एक ही वाद या मतके लोग परस्पर एक दूसरेके पतन और विनाशके प्रयत्नमें लगे हैं, धर्मके नामपर अन्य धर्मको छल-बल-कौशलसे मिटानेकी चेष्टा हो रही है, भगवान् तथा धर्मका तिरस्कार करके मनमाने आचरण तथा उच्छृङ्खल व्यवहारको बेतरह बढ़ाया जा रहा है। शिक्षामेंसे नीति-धर्म, सदाचारका बहिष्कार करके बालकों, युवकों, बालिकाओं और तरुणियोंको सदाचारविरोधी, चरित्रहीन, धर्मविमुख और यथेच्छाचारी बनाया जा रहा है। मर्यादित और संयमी जीवनके स्थानपर फैशन, शौकीनी, बाहरी बनावट, चरित्र-भ्रष्टता, अनियन्त्रितता, उच्छृङ्खलता आदिको जीवनका स्वरूप बनाया जा रहा है—सो भी उच्चजीवनस्तरके नामपर; मनुष्य-के भोग तथा अर्थलाभके लिये विश्वके इतर प्राणियोंकी भाँति-भाँतिसे निर्दय हिंसाके आयोजन हो रहे हैं—बड़े-बड़े कसाईखाने इसके प्रमाण हैं। खान-पानमें सात्त्विकता तथा विशुद्धिके स्थानपर तामस वस्तुओंका, मद्य-मांस-अंडोंका, अपवित्र अखाद्य पदार्थोंका प्रसार-प्रचार बढ़ाया जा रहा है, धनलोलुपता तो मनुष्यमें यहाँतक बढ़ी है और उसने मनुष्यको इतना गिरा दिया है कि वह छल-कपट, चोरीकी बात तो अलग रही, खान-पानकी वस्तुओंमें और दवाइयोंमें भी मनुष्यके लिये प्राणघातक वस्तुओं-का मिश्रण करनेमें अपनेको द्रव्योपार्जनमें चतुर और बुद्धिमान् मानकर गौरवका अनुभव करता है। पवित्र विवाह-संस्था उठने लगी है और उसके स्थानपर पशुओंसे भी निकृष्ट अमर्यादित पशुताका हमारे युवक-युवतियोंमें उदय होने लगा है। भारत-सरकार तो गर्भपात या भ्रूणहत्याको भी कानूनी रूपसे निर्दोष बनाने जा रही है। गुरु-शिष्यका पवित्र तथा आदर्श सम्बन्ध छिन्न-भिन्न हो रहा है। गुरुओंमें स्नेह नहीं है और शिष्य इतने अनुशासनहीन तथा यथेच्छाचारी हो गये हैं कि गुरुओंपर घातक आक्रमण करते हैं। बड़े-बड़े विद्वानोंकी सभाओंमें, नेताओंके दरबारमें, बुद्धिमान् और जनतामेंसे चुने हुए राज्य-मन्त्रियोंको तथा नर-नायकोंकी संसदों और धारा-सभाओंमें भी डंकेकी चोट अनुशासनहीनता, शोर-गुल, हंगामा, गाली-गलौज तथा जूता-पैजार चल रहा है।

पैसोंके प्रलोभन, रिश्वत, दबाव, भय, छल, मिथ्या आश्वासन आदिके द्वारा जनतन्त्रोंका जीवन भयानक और घृणास्पद बनाया जा रहा है और इस प्रकार मानव आज अपने अविवेकके कारण मस्तिष्कका संतुलन खोकर मानवता-के पतनके अनन्त विविध आविष्कार, विचार, योजना तथा कार्योंको नित्य नये-नये रूपोंमें अपनानेमें लगा है—आत्यन्तिक अज्ञानकी महामोहमयी मदिराको पीकर! इससे पता लगता है—मनुष्य किधर जा रहा है।

घोर दुःखकी बात तो यह है कि अध्यात्मप्रधान भारतमें—जहाँसे स्मृति-अतीतकालसे सारे विश्वको उसके उज्ज्वल चरित्रके द्वारा महान् प्रकाश मिलता था, आज मोहान्धकारके बादल मँडरा रहे हैं। प्रकाश तिरोहित हो रहा है। यों ही होता रहा तो पता नहीं, क्या होगा, पतन किस सीमातक जायगा। भारतके ईश्वर-विश्वासी लोगोंको इस घोर पतनोन्मुख परिस्थितिमें बड़े विश्वासके साथ ईश्वरकी आराधना करनी चाहिये—सभी स्थानोंमें सभी प्रकारसे उसे जीवनका प्रथम तथा परम कर्त्तव्य मानकर! भगवत्कृपासे ही इस भयानक अन्धकारका नाश हो सकता है।

वस्तुतः तमसाच्छन्न बुद्धि या बुद्धि-भ्रष्टताके कारण विश्वमानव इसी प्रकार कुपथपर आगे बढ़ता रहा तो इसका परिणाम बहुत ही भयानक हो सकता है। सम्भव है, इसके परिणामस्वरूप विश्वमें मानवोंकी संख्याको भयानक रूपसे कम कर देनेवाली महामारियाँ, लगातार चलनेवाले भयंकर अकाल, प्रकृतिके घोर तथा विशाल ध्वंसकार्य, दैवीप्रकोप, भीषणतम विश्वयुद्ध और तज्जनित महान् संताप, दुःख, पतन, घोर पीड़ा और भीषण नरकयन्त्रणा आदि सुख-शान्ति-स्थितिके विधानके प्रलय-प्रसङ्गोंका प्रादुर्भाव हो और शायद ऐसा आगामी बीस-तीस वर्षोंमें ही हो जाय।

यद्यपि इसमें कोई नयी बात नहीं होगी। पापका परिणाम विनाश, दुःख, पीड़ा, नरकयन्त्रणा होता ही है। प्रकृति किसीके साथ रियायत नहीं करती, भगवान्‌के

मङ्गलनियमोंसे आबद्ध वह अपनी नीतिका पालन करेगी ही। यह भगवान्‌की लीला है। इस विनाश-लीलामें साधुचरित्रों, सात्त्विक मानवोंके भी भौतिक पदार्थों तथा भौतिक देहोंका भी प्रारब्धवश भगवान्‌के नियमानुसार वियोग होगा ही, पर वे दुःख, पीड़ा, नरकयन्त्रणाके भागी नहीं होंगे। परिवर्तनशील प्रकृतिके प्रत्येक परिवर्तनमें ईश्वर-विश्वासी संत भगवान्‌की लीलाका चमत्कार देखते हुए नित्य प्रसन्न रहते और लीलावैचित्र्यके दर्शनसे प्रमुदित होते रहते हैं; भले ही वह लीला सुन्दर मधुर रसकी हो या भयानक बीभत्स-रसकी। प्रत्येक लीलामें वे लीलामयके दर्शन करते हुए मुग्ध और आनन्दमग्न रहते हैं। आत्माकी एकता तथा अमरता, उसके सच्चिदानन्दस्वरूप तथा विश्वके रूपमें भगवान् ही प्रकट होकर सृजन-संहारकी अनवरत लीला करते हैं—ऐसा विश्वास रखने तथा अनुभव करनेवाले पुरुषोंपर इन परिवर्तनोंमें कोई दुःखमय प्रभाव नहीं पड़ सकता। वे सदा ही नित्य सत्य सनातन भगवान्‌के मङ्गलमय विधानमें मङ्गलमयता ही देखते हैं। वे देखते हैं—विश्वमें दो ही चीज। एक लीलामय भगवान्, दूसरी भगवान्‌की लीला। एवं लीलाके रूपमें भी लीलामय ही प्रकट रहते हैं। अतएव एक भगवान् ही भगवान्!

तथापि जगत्‌में रहनेवाले, विधि-विधानके अनुसार कर्मोंके अवश्यम्भावी फलमें विश्वास करनेवाले हम मानव अपने कर्त्तव्यसे कभी च्युत न हों। सत्कर्म-परायण अवश्य रहें, फल तो भगवान्‌के हाथमें है। शास्त्रमें कहा गया है और यह सत्य है कि जब-जब मनुष्य धर्मकी अवहेलना कर पापपरायण हो जाता है, तब-तब दैवी विपत्तियाँ बड़े विशाल रूपमें आया करती हैं। उनको रोकने या उनका नाश करनेके लिये सबको अपने-अपने मत तथा विश्वासके अनुसार देवाराधना-भगवदाराधना करनी-करानी चाहिये।

देवाराधन करें-करायें निज निज मत श्रद्धा-अनुसार।
वेदाध्ययन, यज्ञ, गायत्री पुरश्चरण कल्याणाधार॥
सप्तशती, रुद्राभिषेक, जप-मृत्युञ्जय, नारायण वर्म।
पाठ गजेन्द्रमोक्ष, पावन सप्ताह भागवत पाठ सुकर्म॥
वाल्मीकि, मानस-रामायण पारायण श्रद्धासे युक्त।
भगवन्नाम अखण्ड कीर्तन-जप विश्वास-भाव-संयुक्त॥
ग्वाँर-बिनौला, भूसा-चारा भूखी गायोंको दें दान
श्रद्धायुक्त हृदयसे शुचितम योग्य ब्राह्मणोंको गोदान॥
अन्नकष्ट-पीड़ित मानवको अन्नदान शुचि सह-सत्कार।
दुःख दूर हो दुखीजनोंके करें नित्य ऐसा व्यवहार॥
असहाया विधवा बहनोंको—छात्रोंको दें गुप्त सहाय।
कूएँ बनवायें, जल-कष्ट-निवारणके सब करें उपाय॥
जैन, बौद्ध, सिख, करें सभी निज-निज धर्मानुकूल आचार।
ईसा-भक्त अन्यधर्मी सब करें करुण प्रार्थना-पुकार॥
करें-करायें पुण्य कार्य ये जगह-जगह सब बारंबार।
सन्मति-शान्ति-सुखोदयके हैं ये मङ्गल-साधन अविकार॥

'अपने-अपने मत तथा विश्वासके अनुसार सभी लोग देवाराधन करें तथा करावें। कल्याणके आधार वेदोंका स्वाध्याय, विविध प्रकारके वैदिक यज्ञ, गायत्री-पुरश्चरण, दुर्गासप्तशतीके विविध अनुष्ठान, रुद्राभिषेक, महामृत्युञ्जयके जप, श्रीभागवतोक्त नारायणकवच तथा गजेन्द्रमोक्षके पाठ, श्रीमद्भागवतका पावन सप्ताहपाठरूपी सत्कर्म, श्रद्धायुक्त हृदयसे वाल्मीकिरामायण तथा रामचरितमानसके पारायण और विश्वास तथा प्रेमके साथ भगवन्नामका अखण्ड संकीर्तन और जप करें। भूखी गौओंको ग्वाँर, बिनौला, भूसा, घास-चारा दें। सुयोग्य पवित्रतम ब्राह्मणोंको श्रद्धायुक्त हृदयसे गोदान करें। अन्नकष्टसे पीड़ित मनुष्योंको पवित्र सत्कारके साथ अन्नदान करें। नित्य ऐसा ही व्यवहार करें, जिससे दुखी प्राणियोंके दुःख दूर हों। असहाय विधवा बहिनों तथा गरीब छात्रोंकी गुप्तरूपसे सहायता करें, कूएँ बनवायें तथा जलकष्ट निवारणके लिये अन्यान्य सब उपाय भी करें।

जैन, बौद्ध तथा सिख महानुभाव सभी अपने-अपने धर्मके अनुकूल आचरण करें तथा ईसाके भक्त ईसाई एवं अन्य धर्मावलम्बी भी सब भगवान्‌से करुण प्रार्थना तथा पुकार करें। ये सब पुण्य कार्य सभी लोग जगह-जगह बार-बार करें, करवायें। ये सभी सुबुद्धि, शान्ति तथा सुखकी उत्पत्तिके विकाररहित मङ्गल साधन हैं।

विश्वमें सच्ची शान्ति तथा यथार्थ सुख तो होगा नीचे लिखे अनुसार हमारे जीवन बनेंगे तब—

विश्व चराचरमें है व्यापक नित्य सत्य चित् आत्मा एक।
देखें उसे सभी कालोंमें, सबमें रखकर दृष्टि विवेक॥
सबके सुख-हितको ही समझें नित्य 'स्वार्थ' निज सुखहित-रूप।

'स्व' को रक्खें न सीमित, उसका कर सदा विस्तार अनूप ॥
तन-मन-धनसे कभी न चाहें करें किसीका तनिक अनिष्ट ।
त्याग सर्वविध हिंसा सबका करें सदा ही मङ्गल इष्ट ॥
अति हितकर शुचि 'त्याग' तथा 'कर्तव्य' करें हम अङ्गीकार ।
मोह-ममत्व छोड़कर, कर दें त्याग सहज 'धन' 'पद-अधिकार' ॥
करें न संग्रह कभी वस्तुएँ, बनें न असत्-अभाव-दरिद्र ।
फैशन-व्यसन त्याग, रक्खें जीवनको सादा, शान्त, पवित्र ॥
दें अभावग्रस्तोंको समुदित सविनय अर्थ-भूमि-सम्मान ।
विद्या-बुद्धि-सुसम्मति-आश्रय, जो कुछ हम दे सकें अमान ॥
मानव-दानव-पशु-पक्षी-कृमि सबमें नित देखें भगवान ।
बरतें निज वेषानुसार, पर करें न कभी अहित-अपमान ॥
सभी वस्तुएँ हैं स्वामीकी, हमें किया अधिकार प्रदान ।
रखें, सँमालें करते रहें नियमतः प्रभु सेवामें दान ॥
जहाँ अभाव वस्तु जिसका, हैं माँग रहे उसको भगवान ।
प्रभुको प्रभुकी वस्तु नम्र हो, दे दें, करें नहीं अभिमान ॥
सेवा करें सदा ही सबकी शुद्ध ईश-सेवाके अर्थ ।
सेवाका शुचि भाव बढ़े, प्रभु रखें सदा सेवार्थ समर्थ ॥
करें न किसी पवित्र 'धर्म' पर, 'मत' पर तनिक कभी आक्षेप ।
कहें-करें कुछ भी न कभी जिससे हो पर-मनमें विक्षेप ॥
कर सकते हैं न्याय्य अर्थ-अधिकार सुरक्षा हेतु प्रयास ।
पर वह वैध शास्त्रसम्मत हो, रखकर ईश्वरपर विश्वास ॥
कभी न लें आश्रय अधर्मका, कभी न करें सत्यका त्याग ।
तन-धन जायँ, न जाये धर्म, सत्य, प्रभुपर श्रद्धा-अनुराग ॥
जीवनका उद्‌देश्य एक हो पावन प्रभु-पद-प्रीति अनन्य ।
प्रभु पूजाकी सामग्री बन कार्य, विचार, वस्तु हो धन्य ॥

'सारे जडचेतन विश्वमें एक चेतन आत्मा नित्य सत्यरूपमें विराजित हैं। हम सभी समय तथा सभीमें विवेक दृष्टि रखकर उसे देखें। सभीके सुख तथा हितको ही हम अपना सुख-हितरूप 'स्वार्थ' समझें, अपने 'स्व'को सीमित (छोटेसे दायरेमें) न रक्खें। उसका सदा ही अनुपम विस्तार करते रहें। प्राणिमात्रका 'स्व' ही हमारा 'स्व' हो। तन, मन तथा धनसे कभी किसीका भी तनिक-सा भी अनिष्ट न चाहें—न करें, सब प्रकारकी हिंसाका त्याग करके सभीका मङ्गल तथा इष्ट-साधन करें। अत्यन्त हितकारी 'त्याग' और 'कर्त्तव्य'को ही जीवनमें अपनावें, मोह-ममता छोड़कर 'धन' और 'पद-अधिकार'की कामनाका सहज ही त्याग कर दें। कभी भी वस्तुओंका संग्रह न करें और झूठमूठ ही अपने अभावोंको बढ़ाकर दरिद्र न बनें। सारे फैशनों तथा व्यसनोंका त्याग करके जीवनको सादा, शान्त और पवित्र बनायें। जो अभावसे पीड़ित हैं, उनको हर्षित मनसे विनयपूर्वक मानकी इच्छा त्यागकर धन, जमीन, सम्मान, विद्या, बुद्धि, अच्छी सम्मति, आश्रय—जो कुछ हम दे सकें, उनको दें। मानव, दानव, पशु, पक्षी, कीट सभीमें सदा भगवान्‌को देखें। अपने-अपने वेश (धर्म) के अनुसार बरतें, पर कभी किसीका भी न अपमान करें, न अहित करें। हमारे पास जो कुछ हैं, वे सभी चीजें हमारे प्रभु भगवान्‌की हैं, हमें तो उन्होंने सँभाल तथा उपयोगका अधिकार दिया है। अतएव उन्हें अपनी न समझकर सुरक्षित रक्खें, सँभालें और विनयपूर्वक प्रभुकी सेवामें लगाते रहें। जहाँ जिस वस्तुका अभाव है, भगवान् ही वहाँ वह वस्तु हमसे माँग रहे हैं—ऐसा समझकर विनय-विनम्र होकर प्रभुकी वस्तु प्रभुके अर्पण कर दें। हमने दान किया है—ऐसा कोई अभिमान कभी न करें। प्रभुकी विशुद्ध (निष्काम) सेवाके लिये ही सभीकी सदा सेवा करें। सेवाका फल यही मिले कि सेवाका पवित्र भाव बढ़ता रहे और सेवाके लिये प्रभु हमें सदा समर्थ बनाये रक्खें। किसी भी पवित्र 'धर्म' और 'मत' पर आक्षेप न करें, ऐसा कुछ भी कभी न कहें, न करें, जिससे दूसरोंके मनमें विक्षेप होता हो। अपने न्याय्य, अर्थ तथा अधिकारकी भलीभाँति रक्षाके लिये प्रयास कर सकते हैं, पर वह प्रयास विधिसङ्गत हो—शास्त्रसम्मत हो और प्रभुपर ही विश्वास रखकर किया जाय। हम कभी भी 'अधर्मका आश्रय' न लें और कभी भी 'सत्य'का त्याग न करें। शरीर तथा धन भले ही नष्ट हो जायँ, पर धर्म, सत्य तथा प्रभुमें जो हमारी श्रद्धा तथा प्रीति है, वह कभी न हटे। पावन प्रभुके चरणकमलोंका प्रेम ही जीवनका एकमात्र उद्‌देश्य हो। हमारे तनसे होनेवाले सारे कार्य, मनसे होनेवाले सारे विचार तथा उपयोगमें आनेवाली धन आदि सारी वस्तुएँ प्रभुके पूजनकी सामग्री बनकर धन्य हो जायँ।'

—हनुमानप्रसाद पोद्दार

लीलापुरुषोत्तमका प्राकट्य

(गीतावाटिका गोरखपुरमें श्रीकृष्णजन्माष्टमीके महोत्सवपर पठित)

मञ्जीरनूपुररणन्नवरत्नकाञ्ची-
श्रीहार केसरिनखप्रतियन्त्रसंघम् ।
दृष्ट्वार्तिहारिमसिबिन्दुविराजमानं
वन्दे कलिन्दतनुजातटबालकेलिम् ॥

नीलोत्पलदलश्यामं यशोदानन्दनन्दनम् ।
गोपिकानयनानन्दं गोपालं प्रणमाम्यहम् ॥

गत द्वापरके अन्तमें स्वयं भगवान्ने प्रकट होकर विश्व-ब्रह्माण्डको,—धराधामको धन्य किया था । उसी प्राकट्य-महोत्सवका महापर्व आज है । असुरोंके और असुरमानवोंके अत्याचारसे उत्पीड़ित प्रजाजनका उद्धार करनेके लिये ही इस शुष्क जगत्में अखिलरसामृतसिन्धु षडैश्वर्यपूर्ण स्वयं भगवान्का आविर्भाव होता है । अवतारके अनेक कारण होते हैं । साधुओंका परित्राण, दुष्टोंका दमन, भूमिके भारका हरण, धर्म-संस्थापन, कामकलुषित अधर्मके अभ्युत्थानको ध्वंसकर त्यागमय विशुद्ध प्रेमधर्मका प्रसार इत्यादि । भाद्रपद-की अन्धकारमयी अष्टमीकी अर्द्धरात्रिका समय, क्रूर कंसके कारागारका स्थान, चारों ओर दैत्योपम प्रहरियोंका घोर नाद, यह सभी मानो उस समयके घोर देश, कराल काल और असुर मानवका दर्शन करा रहे थे । इसी समय, उसी अर्द्धरात्रिको, वहीं कंसके कारागारमें स्वयं भगवान्का प्राकट्य हुआ । बस, उनके प्राकट्यका समय आते ही, सारी प्रकृति प्रफुल्लित हो गयी, धन्य हो गयी और अपने प्रभुका विलक्षण रूपसे स्वागत करने लगी । काल समस्त शुभ गुणोंसे सम्पन्न और परम शोभामय हो गया । चन्द्रमा रोहिणी नक्षत्रमें स्थित थे ही । आकाशके सभी ग्रह, नक्षत्र, तारे शान्त और सौम्य हो गये । दसों दिशाएँ प्रसन्न हो गयीं । आकाशमें तारे जगमगाने लगे । पृथिवीके बड़े-बड़े नगर, गाँव और छोटी बस्तियाँ तथा रत्नोंकी खानें मङ्गलकी क्रीड़ाभूमि बन गयीं । नदियोंका जल निर्मल हो गया । रात्रिके समय भी सरोवरोंमें कमल खिल उठे । वनोंमें वृक्षोंकी पंक्तियाँ वर्ण-वर्णके सुगन्धित सुमनोंसे लद गयीं । शुक-पिकादि पक्षी मधुर ध्वनि करने लगे और मधुपान-मत्त भ्रमरोंके गुंजनसे सारा अरण्य-प्रदेश मुखरित हो उठा । परम पवित्र शीतल, मन्द, सुगन्ध वायु अपने सुख-स्पर्शसे सबको आनन्द देती हुई बहने लगी और द्विजोंके हवन-कुण्डोंकी जो अग्नियाँ कंसके अत्याचारसे बुझ गयी थीं, वे अपने-आप प्रज्वलित हो उठीं ।

यह तो बाह्य प्रकृतिने अपना शृङ्गार किया । पर बाह्य जगत्का यह आनन्द अन्तर्जगत्में भी जा पहुँचा । असुर-द्रोही साधुओंका चित्त सहसा प्रसन्नतासे भर गया । अजन्मा भगवान्की जन्म-लीलाके समय बिना ही बजाये स्वर्गमें देवताओंकी दुन्दुभियाँ बज उठीं, जिससे सारा स्वर्ग निनादित और मुखरित हो गया । गन्धर्व, किन्नर और सिद्ध-चारण अपने आप ही सात्त्विक मधुर भगवद्-गुण गीत गाने लगे । विद्याधरियाँ और अप्सराएँ अपने विलास-नृत्यको भूलकर भगवान्के गुण-गानमें मत्त गन्धर्व-किन्नरोंके गोविन्द-गुण-गानकी विशुद्ध तालोंमें ताल मिला-मिलाकर परम मधुर नृत्य करने लगीं । बड़े-बड़े देवता और मुनिगण अत्यन्त मुदित मनसे धराके सौभाग्यकी सराहना करने लगे । समुद्र मन्द-मन्द गर्जन करने लगा, मानो अपनी कन्या लक्ष्मीजीके स्वामीका—अपने जामाताका स्वागत कर रहा है । और बादल भी नीलश्यामके शुभागमनके समय अपने नीलश्याम वर्णको धन्य मानते हुए मृदु-मृदु गर्जना करके अपने सौभाग्यकी गाथा गाने लगे ।

इसी समय देवरूपिणी देवकीजीके पुत्ररूपमें भगवान्का प्राकट्य हुआ । चारों भुजाओंमें शंख, चक्र, गदा, पद्म—धारण किये हुए, पीताम्बर फहराते हुए बालभगवान्को देखकर वसुदेव-देवकी आनन्दमें भर गये, पर साथ ही कंसका भय भी लगा । भगवान्ने माता-पिताको भयभीत देखकर उनसे कहा कि 'तुम मुझे गोकुल पहुँचा दो । भगवान् तुरंत शिशुरूप हो गये । वसुदेवजीने उन्हें गोदमें लिया और चल दिये ।

असलमें भगवान् सर्वशक्तिमान् हैं । सब कुछ कर सकते हैं । पर जीवोंका भी कुछ कर्त्तव्य होता है । उसी कर्त्तव्य-को बतलाकर साधन-मार्गपर चलानेके लिये भगवान् लीला किया करते हैं । अस्तु,

वसुदेवजीके पैरोंकी बेड़ी खुल गयी ।, लोहेके सुदृढ़ द्वार अपने आप खुल गये । प्रहरीगण गाढ़ निद्रामें सो गये । वसुदेव तो सोच ही रहे थे कि मैं कैसे जाऊँगा, पर देखते-ही-देखते यह अघटन-घटना घट गयी । भगवान्को लेकर चले वसुदेवजी, पर बाहर तो गाढ़ अन्धकार था । आकाश मेघाच्छन्न । बूँदें बरस रही थीं । लीलामय भगवान्के श्रीअंगसे ज्योति प्रकट हुई और उसके प्रकाशमें वसुदेवजीको मार्ग दिखायी देने लगा । भगवान्के

सिरपर अनन्त देवने अपने फणोंका छाता बना दिया। उनके दिव्य शरीरपर जलकी एक बूँद भी नहीं लगी। वसुदेव यमुना-किनारे पहुँचे। देखा, यमुनामें तूफान आ रहा है। बड़ी ऊँची-ऊँची तरंगें नाच रही हैं। भयानक भँवर पड़ रहे हैं। वसुदेव फिर भयभीत हो गये। इतना चमत्कार अभी-अभी देखकर आये। पर भगवान्‌की माया बड़ी विचित्र है। आगे बढ़नेका साहस नहीं हुआ।

एक जगह यह कथा आती है कि उसी समय महामायाने सियारका रूप धारण किया और वसुदेवके सामने ही वह सियार यमुनाके पार हो गया। यह देखकर वसुदेवको साहस हुआ। गोदमें भगवान् थे, पर साहस नहीं। यही जीवके विश्वासकी कमी है। भगवान्‌को लेकर वसुदेव यमुनामें उतरे।

एक विचित्र कथा ऐसी मिलती है कि यमुनाने सोचा कि 'प्रभु मेरे ऊपरसे चले जा रहे हैं। मैं एक बार भी उनका आलिंगन न करूँ?' बड़े जोरकी एक तरंग उठी और शिशु श्यामसुन्दरको जलमें ले गयी। वसुदेव हाय-हाय कर उठे। यमुना तो उस समय दर्शनकी लालसासे, आलिंगनकी इच्छासे नाच रही थी। वास्तवमें वह तूफान नहीं था, था यमुनाका आनन्द-नृत्य। पर वसुदेवजी व्याकुल हो गये और उनकी व्याकुलताको देखकर भगवान्‌ने यमुनासे कहा कि 'मेरे पिता संत्रस्त हैं। मुझे जल्दी उनकी गोदमें पहुँचा दो।' यमुनाने कहा, 'महाराज! आज्ञा शिरोधार्य है, पर मैं यह एक वरदान चाहती हूँ कि आपकी बाललीला सारी-की-सारी मेरे ही तटपर हो।' भगवान्‌ने 'तथास्तु' कह दिया और वे पिताकी गोदमें आ गये।

वसुदेवजी नन्दबाबाके महलमें पहुँचे। वहाँ भी सब लोग भगवान्‌की मायासे निद्राग्रस्त थे। वसुदेवजीने सूतिकागारमें जाकर यशोदाकी अभी-अभी जन्मी हुई कन्या महामायाको उठाया और श्रीकृष्णको वहाँ सुलाकर वे लौट आये। वस्तुतः महामायाके प्राकट्यके कुछ ही क्षणों बाद सबको नींद आ गयी थी। यशोदा भी भूल गयी थीं कि मेरे पुत्र हुआ है या कन्या? 'निद्रयाऽपगतस्मृतिः'।

शेष रात्रिमें शिशुकी रुदन-ध्वनि सुनकर यशोदा मैयाकी नींद टूटी। यशोदा पुत्रको देखकर आनन्दमें भर गयीं और आँखोंके द्वारा उस रूपसुधाका अतृप्त पान करने लगीं—'उद्वीक्षती सा पिबतीव चक्षुषा।' एक-एक अङ्गपर मैया नाना प्रकारकी उपमाओंको याद करने लगीं, पर उस रूपकी तुलनामें सारी उपमाएँ पराजित हो गयीं।

उदय हो गये जैसे घरमें कोटि-कोटि नीले शरदिन्दु।
देख नंदरानीके उरमें उमड़ा दिव्य सुखामृत-सिन्धु॥
कैसी अतुलनीय सुन्दरता। कैसा सुरमुनिमोहन रूप।
कैसी निकल रही सुषमा-आभा नख-सिखसे परम अनूप॥

यशोदा रानीने व्यस्त होकर दासियोंसे कहा—'शीघ्र महाराजको खबर दो। वे एक बार आकर देखें।' सुनते ही नन्दबाबा दौड़े आये। यशोदा बोलीं—

देखो, देखो, कैसा आया सुघड़ नीलमणि मेरी गोद।
निरखो आज नील चन्द्रोदय, मन-नयनोंमें भर अति मोद॥

नन्दबाबा तो देखते ही रह गये। उनके हृदयकी उस समय कैसी आनन्दमयी स्थिति थी, उसे बतलानेके लिये शब्द नहीं हैं—

नंद देखते रहे रूप-लावण्य दिव्य छाया प्रति अंग।
नेत्र हुए अनिमेष, लग गई निश्चल रूप-समाधि अभंग॥

बस, सारे व्रजमें समाचार फैल गया। देखते-ही-देखते नन्दबाबाके महलमें भीड़ उमड़ पड़ी। प्रातःकाल हुआ। सभी आनन्दमें नृत्य करते हुए दूध, दही, दूर्वा, माखन, हरिद्रा ले-लेकर चल पड़े अनन्त आनन्द-माधुर्य-सौन्दर्यका दर्शन कर कृतार्थ होनेके लिये।

भगवान् चाहे दैत्योंका दलन करनेके लिये प्रकट होते हों, चाहे अधर्मका नाश करके धर्मकी स्थापना करनेके लिये, पर जिन्होंने उस सौन्दर्य-सुधाराशिका तनिक-सा भी पान किया है, वे तो यही समझते हैं कि हमारे लिये ही भगवान्‌का यह दिव्य प्राकट्य है। भगवान्‌ने असुरोद्धार, गोवर्धनधारण, इन्द्रदर्पचूर्ण, ब्रह्मामोहभङ्ग, कंसोद्धार, पाण्डव-संरक्षण और दिव्य गीतोपदेश आदि बहुत-सी लीलाएँ कीं। उनकी लीलामें कोई ऐसा आदर्श कार्य नहीं, जो छूटा हो। इसीलिये उनका नाम 'लीलापुरुषोत्तम' है।

आज हम उन्हीं लीलापुरुषोत्तमके प्राकट्य-कालमें उनका स्मरण करके धन्य हो रहे हैं और चाहते हैं कि यही चिदानन्दमयी अनन्त रूपराशि हमारे जीवनका एकमात्र ध्येय और साध्य बनी रहे।

बोलो नन्दनन्दनकी जय!

भगवान् श्रीकृष्णकी आविर्भाव-तिथि

(लेखक—श्रीहरिनाथ पाठक चौधुरी)

आज भाद्रमासकी कृष्णाष्टमी तिथि है। इसी पवित्र तिथिको निराकार (प्राकृतिक आकार-रहित) परम ब्रह्मके वैकुण्ठस्थित साकाररूपमें भगवान् श्रीकृष्ण भारतभूमिपर अवतीर्ण हुए थे। उनका रूप था चतुर्भुज। शङ्ख, चक्र, गदा, पद्मधारी; पीताम्बर-परिहित, कण्ठमें कौस्तुभमणि, मस्तक-पर उज्ज्वल किरीट, कानोंमें मकर-कुण्डल। यह मूर्ति हुई अप्राकृत—पाञ्चभौतिक नहीं। बादमें उन्होंने शिशुरूप धारण किया तो वह भी अप्राकृत ही था। मानवशिशुकी वैसी मूर्ति नहीं हो सकती। इसलिये श्रीकृष्णके सम्बन्धमें 'जन्म' लेने-जैसे शब्दका व्यवहार शुद्ध नहीं। ग्रन्थोंमें उल्लेख है—'देवकी देवीके गर्भसे उनका जन्म हुआ।' किंतु इसे व्यावहारिक रूपमें ही ग्रहण करना चाहिये।

वैकुण्ठप्रयाणके समय भी यही रूप धारण करके वे अन्तर्धान हुए। यथा—

माधवे पाछे स्नान करि जले।
बसिला आसने अश्वत्थ तले॥
धरिला दिव्य चतुर्भुज रूप॥
पाछे योग धारणा धरिला।
आपोनाक आत्माते थापिला॥
निमिषेके नर चेष्टा एरि।
बैकुंठत प्रवेशिला हरि॥
हेन तनु भैला अन्तर्धान।
बिजुली छटाक येन थान॥

(आसामी भाषा—कीर्तन घोषा)

इसके बाद माधवने जलसे स्नान किया और वे अश्वत्थके नीचे आसनपर विराजे······दिव्य चतुर्भुजरूप धारण किया। तदनन्तर योगधारणा की और अपनेको आत्मामें स्थापित किया। एक निमिषमें नर-चेष्टा छोड़कर हरिने वैकुण्ठ-प्रवेश किया। इस प्रकार उनका तन अन्तर्धान हुआ और उस स्थानपर बिजलीकी छटाके समान प्रकाश हो गया।

भगवान्‌के पूर्ण अवतार

श्रीकृष्णके रूपमें भगवान् विष्णुका पूर्ण अवतार कहा जाता है। अन्यान्य अवतार अंश वा कला कहे जाते हैं। किसी-किसी ग्रन्थमें श्रीरामचन्द्रको भी पूर्ण अवतार माना गया है। शास्त्रमें दस अवतार कला-अवतार कहे गये हैं। श्री-कृष्णको इन कला-अवतारोंमें नहीं माना गया है। इस आधार-पर वे पूर्ण अवतार हुए। भारतवासियोंकी एकान्त कामनाके फलरूपमें ही इस भूमिपर स्वयं भगवान्‌का यह अवतरण हुआ।

मनुष्यसमाज आदिसे ही विश्वास करता आया था कि इस विश्वजगत्‌का एक स्रष्टा है। वह अलक्षित रूपमें ही अन्तरिक्षमें स्थित होकर समस्त जगत्—संसारकी परिचालना कर रहा है। उसे देख न पानेपर भी सभी उसके अस्तित्वमें विश्वास करते हैं। उसके प्रति मनमें और चित्तमें एक आकर्षण अनुभव करते हैं। यह अनुभूति और विश्वास न्यूनाधिक परिमाणमें चला ही आया है।

कालक्रममें किसी-किसी प्रगतिशील समाजमें उसे इस प्रकार जानकर ही संतोष नहीं किया गया। उसकी ओरसे कोई वास्तव अभिज्ञान पानेके लिये व्यग्रता हुई। इसके फल-स्वरूप किसी समाजको मिला उसका एक अनुचर, किसीको पार्षद, किसीको प्रेरित पुरुष और किसीको पुत्र। किंतु भारतके सनातनधर्मी जनसमाजकी व्याकुलता इतनी प्रबल हुई कि उसने स्वयं भगवान्‌को इस भूमिपर उतारकर छोड़ा। अपने बीच स्वयं भगवान्‌को उतार लानेका महान् साहस और प्रयास भारतके अतिरिक्त पृथ्वीपर कहीं देखनेको नहीं मिलता। इस अपूर्व अवतरणको स्मरण करके आसामके महापुरुष माधवदेवने भक्ति-गद्गद चित्तसे गाया है—

यिटो निगमर गुप्त वित्त।
हेन हरि गोकुले बिदित॥
शुनिते कौतुक अनुपाम।
ब्रह्मेरे वरण घनश्याम॥
अनुमाने कहे याक सकलो निगमे।
सहि हरि केलि करे गोप-शिशु समे॥
कोटि-कोटि ब्रह्माण्डर तजिया विभूति।
की लागि हइला प्रभु गोपर संगति॥
शुद्ध परम ब्रह्म गोपकुमारा।
त्रिभुवन तारण हेतु अवतारा॥

जो निगमके गुप्त वित्त हैं, वे ही हरि गोकुलमें प्रकट होते हैं। सुननेमें अनुपम और कौतुकपूर्ण लगता है कि ब्रह्मका वर्ण घनश्याम है। अनुमानसे ही सभी निगम जिनका वर्णन करते हैं वे ही हरि गोपशिशुओंके साथ केलि करते हैं। कोटि-कोटि ब्रह्माण्डकी विभूति छोड़कर किस हेतुसे प्रभु गोपोंकी संगति ग्रहण करते हैं? शुद्ध परम ब्रह्मको गोपकुमार बनना पड़ा। यह अवतार त्रिभुवनतारणके हेतु ही हुआ।

श्रीकृष्ण सभीके अपने

विमुग्ध भक्तोंसे भगवान्‌को केवल अपने बीच लाकर शान्त नहीं रहा गया। उनके जीवनचरितका इस प्रकार भाग किया गया कि भारतके प्रत्येक स्तर और श्रेणीके लोग श्रीकृष्णको 'अपने बीचका ही एक' सहज ही अनुभव कर सकें।

उन्होंने गोकुल-वृन्दावनमें 'गोपसमाजका ही एक' होकर विविध विचित्र लीलाएँ और खेल किये। किशोरकाल वहीं बिताया। वे ग्रामीण समाजमें इतने घुल-मिल गये कि पहले-पहल मथुरानगरके राजपथपर घूमते हुए कोई उन्हें सहज ही गँवार (ग्रामीण) मान ले। नगरीय लोग ग्रामीणोंको कोई गर्हित कर्म करनेपर आजकल जैसे पुलिसका भय दिखाते हैं, ठीक वैसे ही मथुराके धोबीने वस्त्र माँगनेपर उन्हें भय दिखाया—

किनो महामूढ़ तोरा गोवाल।
पर्वत बनत खपह काल॥
मरिवाक् लागी नाहिके त्रास।
राजार वस्त्रक पिन्धिवे चास॥
प्राण कइया पला ओहर अन्तरि।
राजदूते पाइले दंडिवे धरि॥

पर्वत और वनमें समय बितानेवाले तुम ग्वाले कैसे महामूढ़ हो। तुमको मरनेका भय नहीं लगता, जो कि राजाके वस्त्र पहननेकी साध रखते हो! भाग जाओ प्राण लेकर यहाँसे दूर, कहीं राजदूत पकड़ पायेगा तो दण्ड देगा।

नगरमें नागरिक बन जानेमें भी उन्हें अधिक दिन नहीं लगे। जो-जो गुण नगरके लोगोंमें होने चाहिये, सभी उन्होंने अर्जित कर लिये। गुरुगृहमें रहकर वेद (ज्ञान)-विद्यामें पारङ्गत हुए। युद्ध-विद्यामें निपुण हुए। उग्रसेनको राजसिंहासनपर बैठाकर राजनीति और कूटनीतिकी चर्चा की। उसमें भी विचक्षण! यथाक्रम क्षत्रियोंके साथ युद्ध-विग्रहमें लिप्त होकर उनमेंके ही एक हो गये। मगधपति दुष्ट जरासंधके वधके बाद उसके कारागारमें वन्दी राजाओंकी मुक्ति हुई। इसके फलस्वरूप राजन्यवर्गने भी श्रीकृष्णको अपना ही एक मान लिया। इसी कारण पाण्डवोंके राजसूय यज्ञमें सम्मिलित क्षत्रिय राजाओंके बीचमें उन्हें सर्वश्रेष्ठ पुरुष स्वीकार किया गया और उन्हें यज्ञमें अर्घ्य मिला। उनकी सर्वप्रथम पूजा हुई।

एक बार सूर्यग्रहणके समय कुरुक्षेत्रतीर्थमें श्रीकृष्णने अपने पिता वसुदेवजीके द्वारा यज्ञकर्म सम्पन्न कराया। इस उपलक्ष्यमें भारतके प्रायः सभी श्रेणीके लोगोंको आमन्त्रित किया गया था—

······'कुरुक्षेत्र नाम तीर्थ अनुपम॥
सूर्यर ग्रहणे महारंग मने।
यत यदुगणे लैला नारायने॥
(नन्दयो) गोप-गोपीगण लैया परिजन।
हरषित मन करिला गमन॥
कौरव-पाण्डव यत राजा सब।
करिया उत्सव गैला सेहि ठाव॥
······'यत ऋषिगण आइला सेहि क्षण॥
आत्म तत्त्व ज्ञान शास्त्रर प्रमान।
वसुदेव स्थान कैला भगवान॥

—लीलामाला

···'कुरुक्षेत्र नामका तीर्थ अनुपम है। सूर्यग्रहणके समय बहुत आनन्दित मनसे जितने यदुलोग थे, उनको नारायण (कुरुक्षेत्र) ले आये। (नन्दने भी) गोप-गोपीजनों और परिजनोंको साथ लेकर हर्षित हृदय-मनसे गमन किया। जितने भी कौरव-पाण्डव राजा थे, सब उत्सव करके वहाँ गये। ·····'जितने भी ऋषिगण थे, उस समय आये। भगवान्‌ने वसुदेवको शास्त्रप्रमाणित आत्मतत्त्वज्ञान सुनाया।

धर्म-तत्त्व-व्याख्या

उस जनसभामें वसुदेवके उपलक्ष्यसे श्रीकृष्णने धर्मतत्त्वकी जो व्याख्या की, वह एकत्र हुए सभी श्रेणीके लोगोंके लिये थी। यह व्याख्या सुनकर आत्मतत्त्व, ब्रह्मतत्त्व आदिका विवेचन प्राप्त कर वहाँ उपस्थित ब्रह्मज्ञानी ब्राह्मण, ऋषि-मुनि सभीने श्रीकृष्णको अपनेमेंसे ही एक अनुभव किया। कुरुक्षेत्र तीर्थकी यज्ञस्थलीमें सार्वजनिक रूपसे हुए इस

आध्यात्मिक और पारमार्थिक धर्मतत्त्वसमूहके कीर्तनके पश्चात् उसी क्षेत्रकी रण-स्थलीमें ज्ञानयोग और भक्तियोगके पर्यायसे अर्जुनके सम्मुख गीताके रूपमें भगवान् श्रीकृष्णने व्यक्त किया। अर्जुनको युद्ध-कर्ममें संलग्न करनेके लिये उपयोगी एक अभिनव तत्त्व भी इसीके साथ उन्होंने जोड़ दिया। यह है निष्काम कर्मयोग अर्थात् कर्म और उसके फलके प्रति आसक्ति-कामनाका त्याग (गीता ४ । २०)। मालूम होता है कि यह तत्त्व यज्ञ-स्थलीमें इस कारण प्रकाश नहीं किया गया था कि जनसमाजके लिये वह साध्यातीत होनेसे अवास्तविक हो उठता। कर्म और फलके प्रति अनासक्ति रखकर अर्थात् उसकी ओर मनोनिवेश न कर या दृष्टि न रखकर किया जानेवाला कर्म सबके लिये सुचारुरूपसे सम्पन्न होकर फलदायक नहीं हो सकता। इस प्रकार कर्म करनेवाले कर्मयोगी लोगोंके उदाहरण भी इतिहास-पुराणमें बहुत कम मिलते हैं।

राजा जनकको इस प्रकारका एक कर्मयोगी बताया जाता है। गीताके तीसरे अध्यायके २०वें श्लोकमें भी यह उक्ति है। पर यह जानना चाहिये, राजर्षि जनक वास्तवमें एक ब्रह्मविद्याविद् ब्रह्मज्ञानी पुरुष थे। और राजा जनकके ब्रह्मज्ञानी होनेकी ही ख्याति ठीक बैठती है, कर्मयोगी होनेकी नहीं। फलाकाङ्क्षाका अर्थ होता है कर्मफलके प्रति अपना स्वार्थनिहित मोह। उपर्युक्त कर्मयोग-साधनके विकल्परूपमें सभी कर्म ईश्वरके मानकर, अपने न मानकर, उन्हें ही (ईश्वरको) आनन्द देनेके उद्देश्यको सामने रखकर शुद्ध चित्तसे सम्पन्न करनेपर ही 'फलाकाङ्क्षा' दोषसे मुक्त रहकर निष्काम कर्मयोगी हुआ जा सकता है।

प्रत्येक भारतीयके अन्तरमें

जो भी हो, इन सबके अतिरिक्त भी श्रीकृष्णदेवने भारतमें अवतीर्ण होकर १२५ वर्षके लीलाकालमें, भारतीय समाजके प्रतिकूल क्रियाशील शक्ति-समूहोंको समूल उखाड़ फेंका और समाजमें शान्तिकी प्रतिष्ठा की। सर्वोपरि, श्रीकृष्णको केन्द्र करके निर्मित इतने अधिक रसस्रावी साहित्य, काव्य और कला-संस्कृतिसे भारत भरपूर है कि श्रीकृष्णविहीन भारतकी बात सोची ही नहीं जा सकती। सनातनधर्मी प्रतिजन भारतीयके अन्तरमें पुरुषानुक्रमसे श्रीकृष्ण प्रतिष्ठित हो रहे हैं। भारतभूमिके उत्तरसे दक्षिण और पूर्वसे पश्चिमके छोरोंतक सम्पूर्ण जनसमाजमें वैष्णवधर्मका आधिपत्य है। श्रीकृष्णकी गुण-गरिमा और लीला-चरित्रकी आज भी इतनी अधिक चर्चा होती है और उनको रूपायित किया जाता है कि अनुभव होता है जैसे श्रीकृष्ण आज भी हमारे बीचमें ही हैं।

श्रीकृष्णके स्वयं विष्णुका पूर्ण अवतार लेनेके समयसे भारतमें विष्णु-भक्ति और विष्णु-पूजा तथा वैष्णवधर्मका प्रवर्तन हुआ। आज भी वह सब पूरी प्रभाके साथ चलता जा रहा है। किसी-किसी ग्रन्थमें वैष्णवधर्मको 'वासुदेवधर्म' बताया गया है। 'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय' का द्वादशाक्षरी बीज-मन्त्र प्रसिद्ध है।

ऊपर भगवान् श्रीकृष्णके जीवनके विषयमें जो अल्प-सा विवेचन उपस्थित किया गया है, वह मेरे कल्याणके लिये है। वास्तवमें उनके चरित्रके सम्बन्धमें विवेचन करनेकी मेरी कोई योग्यता नहीं। कारण, मानवीय दृष्टिकोणसे ईश्वरके कार्य-कलापका माप करने जाना मूढ़तामात्र है। अवश्य ही श्रीकृष्णके चरित्रका एकदम स्पष्ट झलकनेवाला, आगे निकला एक पहलू है कि मानवीय मोह-मायासे वे सम्पूर्ण मुक्त थे। कंसका राज्यादेश पानेपर एक दिन अकस्मात् वे गोकुल छोड़कर चले गये। फिर जीवनभर उन्होंने व्रजभूमिपर चरण नहीं रक्खा। नन्द-यशोदाका स्नेह, गोप-गोपियोंका प्रेम, गोप-शिशुओंका संग-सुख पलभरमें त्यागकर वे गये सो गये ही। मथुरासे गोकुल केवल दो घंटेका मार्ग। इच्छा होनेपर वे प्रतिदिन ही आना-जाना रख सकते थे, पर नहीं। यह है भगवान् श्रीकृष्णके मोह-मुक्त चरित्रका एक प्रत्यक्ष प्रमाण। इसके उपरान्त, अपने ही यदुवंशके लोगोंके अत्यन्त सुरासक्त और दुर्दान्त प्रकृतिके होनेके कारण उनके ध्वंसमें साधन बनना, इसका अन्य एक निदर्शन है।

आज उन्हीं पूर्ण ब्रह्म भगवान् श्रीकृष्णके भारतभूमिपर आविर्भावके दिन उनके चरणोंमें भक्तिसहित श्रद्धाञ्जलि अर्पण करके इस प्रसङ्गकी समाप्ति की जाती है।

गोवध-निरोध *

(लेखक—आचार्य श्रीविनोबा भावे)

साधारणतया भारतमें और विशेषकर कलकत्तामें पशुओंके साथ जो व्यवहार होता है, मेरे लिये वह बड़े संतापका विषय है। प्रायः यह कहा जाता है कि कलकत्ता-की बढ़ती हुई जनसंख्याके लिये दूध उपलब्ध करना एक विकट समस्या है तथा इसके लिये एक विशाल आयोजनकी आवश्यकता है, परंतु दुर्भाग्यवश किसीने इस ओर उचित ध्यान नहीं दिया। कलकत्तेमें दूधका व्यापार करनेवाले ग्वाले, पंजाबसे सर्वश्रेष्ठ नस्लोंकी गायोंको कलकत्ता लाकर दूध देनेतक तो उन्हें पालते हैं और पीछे सूख जानेपर उनको कसाईके यहाँ कटनेको भेज देते हैं। परिणाम यह निकलता है कि कलकत्ता शहर ही सर्वश्रेष्ठ नस्लकी गायोंके विनाशके लिये उत्तरदायी है। इसके अतिरिक्त (कलकत्तामें) गायोंके साथ बड़ा नृशंस व्यवहार किया जाता है, जिसके कारण गांधीजीको दुखी होकर दूध छोड़ देना पड़ा। पीछे वे बहुत कमजोर हो गये और कस्तूरबाके विनम्र आग्रहपर उन्होंने बकरीका दूध लेना प्रारम्भ कर दिया। यह सब वृत्तान्त आपको गांधीजीकी आत्मकथामें मिलेगा। परंतु गायोंके प्रति वैसा ही नृशंस अत्याचार आज भी जारी है।

दूधकी पौष्टिकता

भारतके अर्थतन्त्र और भारतीय संस्कृतिमें पशुओंका बड़ा प्रमुख भाग है। केवल दूध और दूधसे बने पदार्थ ही, शाकाहारी लोगोंके शरीरको आवश्यक प्रोटीन देते हैं। मांसका सेवन तो बहुत थोड़े भारतीय करते हैं। इसलिये संतुलित आहारके लिये दूध, साग-भाजी और फल परमावश्यक हैं। बढ़ती हुई जनसंख्याके साथ प्रति व्यक्ति भूमिका अनुपात तेजीसे घटता जा रहा है और उस मात्रामें आमिषभोजी बढ़ेंगे नहीं। मानव संस्कृतिमें मांसाहारका स्थान कभी भी गौरवप्रद नहीं रहा।

भारतमें कृषिकी प्रधानताके कारण, पशुओंकी रक्षा होनी ही चाहिये। भारतमें कृषिके लिये यन्त्रोंके उपयोगकी बातमें कोई सार नहीं है। भारतमें कृषि-कार्य यन्त्रीकरणको झेल नहीं सकता; क्योंकि यह मानव-श्रमका स्थान लेता है और हमारे यहाँ श्रमिकोंके आधिक्यकी एक समस्या है। बैल केवल हरी या सूखी, जो भी सरलतासे मिल जाय ऐसी घास खाते हैं और गोबरके रूपमें हमारे खेतोंको बहुमूल्य उत्कृष्ट खाद देते हैं। जब कि हल-यन्त्र (ट्रैक्टर) न तो घास ही खा सकता है और न खाद ही देता है। उसके लिये जो तेल चाहिये, वह अभी भी विदेशोंसे आता है। इसलिये अमेरिकाकी नकल करनेसे कोई लाभ नहीं है। अमेरिकाके पास प्रतिव्यक्ति लगभग चौदह एकड़ भूमि है, जब कि भारतके पास प्रतिव्यक्ति तीन चौथाई एकड़ भूमि तथा बंगालके पास तो प्रतिव्यक्ति केवल आधी एकड़ भूमि ही है। इसलिये हल-यन्त्रोंके लिये कोई स्थान नहीं है और वे बैलोंका स्थान नहीं ले सकते। †

* [सर्वसेवासंघ—कृषिगोसेवासमिति, ३० शंकर मार्केट, कनाट सर्कस, नयी दिल्ली—१ के सचिव (सेक्रेटरी) श्रीनलिन मेहताद्वारा प्रकाशित 'भारतीय अर्थ-शास्त्रमें पशु' (एसेजआन इण्डियाज कैटल इकोनोमी)—नींवसे निर्माण (बिल्डिंग फ्राम बिलो) के संग्रह, पृष्ठ ११—१३ पर प्रकाशित अंग्रेजी प्रबन्धसे अनूदित]

गायकी शक्तिका शायद ही कोई अंदाज लगाता हो। इसीके द्वारा देशके कृषिक्षेत्रोंको जोतनेके लिये आवश्यक शक्ति (पावर) मिलती है। यह शक्ति बिजलीके ४० अरब (४० हजार मिलियन) किलोवाटके (K. W.) बराबर होती है तथा ईंधनके रूपमें २२ अरब (२२ हजार मिलियन) गैलन डीजल तेल (आयल) के बराबर होती है जिसका मूल्य ४८५ करोड़ रुपये वार्षिक होता है। इसके अतिरिक्त गोबरका यदि खादमें पूरा उपयोग किया जाय तो सिंदरी-जैसे नये ९ (नौ) कारखानोंके बराबर होगा।—इसके मृत शरीरसे चर्म तथा अन्य रासायनिक पदार्थ मिलते हैं, उनसे राष्ट्रकी आयमें वृद्धि होती है सो अलग। यह सब राष्ट्रके स्वास्थ्यके लिये मिलनेवाले अत्यन्त आवश्यकीय दूधसे अतिरिक्त हैं। देशको इसी जीवपर ५५ प्रतिशत दूधके लिये निर्भर करना पड़ता है। ऐसी गिरी हुई हालतमें भी इस गायके द्वारा देशको बहुत बड़ी देन मिल रही है।

[इसी संस्थाद्वारा प्रकाशित 'राजकरसम्बन्धी नीति और अर्थसम्बन्धी वृद्धि' (फिसकल पोलिसीज एण्ड इकोनोमिक ग्रोथ)—

इसके अतिरिक्त, पश्चिमके लोगोंकी तरह भारत कभी भी गोमांस नहीं खा सकता; क्योंकि यह उसकी सांस्कृतिक परम्पराके विपरीत है। इसलिये गाय-बैल आदि पशु हमारे लिये एक आवश्यकीय वस्तु हैं तथा सब प्रकारसे रक्षणीय हैं। शासन, व्यापारी और जनता—सबको इसके लिये मिलकर सम्मिलित प्रयत्न करने चाहिये।

गोहत्या कानूनद्वारा बंद होनी चाहिये। यह कहा जाता है कि एक धर्म-निरपेक्ष (सेक्युलर) राज्यमें इस प्रकारका कानून बनना सम्भव नहीं है; क्योंकि भारत विविध धर्मोंवाला एक राज्य है।

मैंने इस्लामके धर्म-ग्रन्थोंका अध्ययन किया है और मैं पूरे विश्वासके साथ यह कह सकता हूँ कि इस प्रकारकी बातें करना इस्लामधर्मका अपमान करना है। मैं इस्लामकी ओरसे यह कहता हूँ और मुझे विश्वास है कि कोई मुसल्मान इसके सम्बन्धमें विरोध नहीं करेगा कि कुरानमें ऐसी कोई भी आयत नहीं है, जो गोहत्याको चाहती हो। यही बात हिंदू-शास्त्रोंके लिये भी कही जा सकती है, जिनमें कहीं भी पशु-बलिको शास्त्रविधिका अभिन्न अङ्ग नहीं माना गया है। हिंदू और मुसल्मान तबतक विवेकशील नहीं कहे जा सकते, जबतक कि वे धर्मके नामपर की जानेवाली पशु-हिंसाको छोड़ न दें। बादशाह अकबरके राज्यमें गोहत्यापर प्रतिबन्ध था। हमारी सरकारको यह महसूस करना चाहिये कि इस प्रकारका कानून धर्म-निरपेक्षताके सिद्धान्तके विपरीत नहीं है। इसलिये कानूनद्वारा गोहत्या अवश्य बंद की जानी चाहिये।

पशुपालनके वैज्ञानिक तरीके

समाजवाद सभी व्यक्तियोंके लिये समान रक्षणका दावा करता है। परंतु समाजवादकी भारतवर्षकी अपनी जो धारणा या मान्यता है, उसमें मानवसमाजके साथ पशु भी सम्मिलित माने जाते हैं; क्योंकि गाय हमारे बालकोंकी पुष्टिके लिये अपना दूध प्रदान करती है, इसलिये उसके प्रति कृतज्ञता-ज्ञापनके लिये भी गायकी रक्षा करना हमारा कर्तव्य है। गायको अपनी स्वाभाविक मृत्यु मरने देना चाहिये और तब उसके मृतक शरीरका उपयोग जूते बनाने इत्यादिके काममें किया जाना चाहिये। इसमें कोई संदेह नहीं है कि नस्लका भी सुधार होना चाहिये, और इसके लिये हमें पशुपालनकी वैज्ञानिक पद्धति अपनानी चाहिये; परंतु इसके साथ ही गायको सब प्रकारसे संरक्षण मिलना चाहिये।

हम यह नहीं कह सकते कि गायमें अन्य पशुओंकी अपेक्षा कुछ अधिक आत्मशक्ति होती है। जहाँतक आत्माका प्रश्न है सभी जीवोंकी एक ही कोटि है। चूँकि गाय भारतीय जीवन और अर्थतन्त्रका मूलाधार है, इसलिये वह विशेष सद्व्यवहारकी पात्र है।

मेरे स्वयंके ये विचार हैं कि बालक, बीमार और वृद्धोंका गायके दूधपर प्रथम अधिकार है। यदि मेरे हाथमें कानून होता तो मैं सबसे पहले गायके दूधसे बननेवाली मिठाइयोंपर प्रतिबन्ध लगा देता। परंतु ऐसा नहीं हो सकता; क्योंकि संत सूरदासजीने कहा है—

> कर्मनकी गति न्यारी।
> मूरख मूरख राजे कीन्हें, पंडित फिरत भिखारी॥

अतः राज्यकी बागडोर पण्डितोंके हाथ कभी नहीं आ सकती। तुम्हारे सम्मुख मेरे-जैसा भी पण्डित है, जो कि किसी भी सरकारपर विश्वास नहीं करता और न उसकी परवा ही करता है; क्योंकि वह सभी सरकारोंको उड़ाकर शासन-मुक्त समाजकी स्थापना करना चाहता है। कदाचित् मेरे हाथमें सरकारकी बागडोर होती तो मैं मिठाइयाँ बनानेमें दूधका दुरुपयोग बिल्कुल नहीं होने देता। मेरे बंगाली भाई, जिन्हें रसगुल्ले प्रिय हैं, मुझे क्षमा करेंगे। मुझे लगता है कि हमारे-जैसे गरीब देशमें, जहाँ केवल ३ आउंस (डेढ़ छटाँक) दूध ही प्रति व्यक्तिके हिस्सेमें आता है, दूधसे मिठाइयाँ बनाकर बालकों और बीमारोंको दूधसे वञ्चित रखना एक पाप है। प्रति व्यक्तिके हिस्सेमें आनेवाले ३ आउंस दूधमें गाय, भैंस, बकरी,

[नींवसे निर्माण (बिल्डिंग फ्राम बिलो) संग्रहमें प्रकाशित, स्वर्गीय तत्कालीन प्रधानमन्त्री श्रीलालबहादुर शास्त्रीद्वारा उद्घाटित अखिल भारतीय गो-संवर्धन-सम्मेलन (हैदराबाद) द्वारा २१-२३ मार्च, १९६५ के समय अङ्गीकृत प्रस्तावोंमेंसे पृष्ठ १६२के स्तम्भ २ के अंशसे अनूदित]

ऊँटका दूध तो शामिल है ही, और है सम्भवतः गधेतकका दूध भी। प्रत्येक शाकाहारी व्यक्तिको कम-से-कम १ पौंड (लगभग आधा सेर) दूध मिलना चाहिये। अगर इससे अधिक दूध हो तो उसका उपयोग हम मिठाई बनानेमें कर सकते हैं। इंग्लैंडमें प्रति व्यक्ति २ पौंड (लगभग एक सेर) दूध होता है, जब कि तीन पञ्चवर्षीय योजनाओंके उपरान्त भी हम अपने देशमें एक बूँद दूध भी नहीं बढ़ा सके हैं। अविभाजित भारतमें ४ आउंस (लगभग दो छटाँक) दूध प्रति व्यक्तिके हिस्सेमें आता था; परंतु अब दूध-उत्पादक भागके पाकिस्तानमें चले जानेके कारण भारतका दूधका हिस्सा बहुत कम हो गया है।

दूधका अल्प उत्पादन

जहाँतक बंगालका सम्बन्ध है, वहाँ प्रति व्यक्तिके हिस्सेमें २ आउंस (लगभग एक छटाँक) दूध ही आता है। आसामकी हालत इससे भी गयी-बीती है। अपनी आसामकी यात्रामें मुझे नित्यप्रति लगभग १० या १२ गायोंके दूधकी आवश्यकता पड़ती थी। इसीसे आप अनुमान लगा सकते हैं कि वहाँ प्रत्येक गाय कितना कम दूध देती है। अगर मेरे यूरोपियन मित्रोंको यह पता लगे कि यह भूदानी बाबा १२ गायोंका दूध रोजाना पी जाता है तो वे चौंक जायँ। यूरोपमें १ गाय ५० पाउण्ड (लगभग २५ सेर) दूध नित्यप्रति देती है। इसलिये उन्हें आश्चर्य होगा कि बाबा जरूर कोई राक्षस है जो कि नित्यप्रति ६०० पाउण्ड दूध पचा जाता है। उन्हें यह पता नहीं कि आसाममें प्रत्येक गाय नित्यप्रति मुश्किलसे कुछ तोले दूध देती है। छोड़िये इन तमाशेकी बातोंको। सच तो यह है कि यूरोपियन लोगोंका पशु-पालनका ज्ञान हमसे अधिक है। वे हमारी तरह यह ढिंढोरा नहीं पीटते कि गायमें तैंतीस करोड़ देवताओंका निवास है; परंतु वे गायकी रक्षा करना जानते हैं। पशुपालनकी दिशामें भारतको पश्चिमसे अभी बहुत कुछ सीखना है। गायमें सब देवताओंका निवास मानकर हम उसकी पूजा तो करते हैं; परंतु उसकी पूर्णरूपसे उपेक्षा करते हैं। गायकी ऐसी पूजा करना और उसका शोषण करना—इससे कुछ लाभ नहीं हो सकता।

मैंने अनेक बार यह कहा है कि कसाईखानोंके लिये पंजाबसे कलकत्तामें गायोंका आना कानूनद्वारा अविलम्ब रोक देना चाहिये। साथ ही लोगोंको गो-पालनकी ओर भी उचित ध्यान देना चाहिये। गायोंका यह लालन-पालन वैज्ञानिक ढंगसे होना चाहिये। आज हमारे सम्मुख यह एक गम्भीर समस्या है। यदि मनुष्य दूधके स्थानपर कोई दूसरी चीज खोज निकाले और बैलकी तरह कृषि-कार्योंमें स्वयं श्रम करने लगे तो परिस्थिति बदल सकती है। वैसी हालतमें गायका हमारे लिये कोई उपयोग नहीं रहेगा और ईश्वरकी सृष्टिमें हम उसको अपना स्वाभाविक स्थान ग्रहण करनेको छोड़ देंगे; किंतु निकट भविष्यमें तो ऐसा होना व्यावहारिक नहीं लगता। हम यह नहीं भूलें कि भगवान् गोपालकृष्णका युग अभी समाप्त नहीं हुआ है। गीताके श्रीकृष्णसे गोपालकृष्ण भारतीय जनताके अधिक निकट हैं, यद्यपि गीतामें श्रीकृष्णके सर्वश्रेष्ठ उपदेश हैं। भारतीय श्रीकृष्णकी पूजा गौके साथ करते हैं। शुकदेवजीने भगवान्, गौ और मनुष्योंके मध्य ईश्वरीय प्रेमकी प्रशंसामें बहुत गीत गाये हैं। मि० एण्ड्रयूजने एक बार मुझसे कहा था कि 'ईसाई इन भावोंको भलीभाँति समझ सकते हैं; क्योंकि ईसामसीहका जन्म भी अस्तबलमें हुआ था।'

एक बार एक ईसाई मित्रने तर्क किया कि गायमें भी आत्मा है—ऐसा विश्वास नहीं किया जा सकता। जब मैंने उनसे पूछा—'आप मानते हैं या नहीं कि ईश्वर प्रेमरूप हैं?' उन्होंने इसका स्वीकारात्मक उत्तर दिया। मैंने पुनः पूछा—'क्या पाले हुए जानवर, जिन्हें आप प्यारसे खिलाते-पिलाते हैं, प्यारके व्यवहारको महसूस करते हैं और आप भी उनके लिये वैसा ही अनुभव करते हैं?' उन्होंने उत्तर दिया कि 'पशु और मनुष्य—दोनों ही प्यारकी बातको समझते हैं।' मैंने और भी कहा कि परमेश्वर ही प्रेम है और पशु प्रेमके व्यवहारको समझ सकता है तो यह कैसे हो सकता है कि उसमें कोई ईश्वरीय अंश न हो। गायकी बात छोड़ दीजिये, क्या आप अपने पास रक्खे हुए कुत्तोंके प्रति आकर्षणका अनुभव नहीं करते? भारतीयोंको गायके प्रति दया और प्यार है और उसे वह अपने परिवारका सदस्य मानते हैं। हम गायकी पालना करते हैं और गाय हमारी पालना करती है। परस्परके इस व्यवहारसे हम मनुष्ये-

तर प्राणियोंको अपना प्रेम अर्पित करके अपनी मानवताको समृद्ध करते हैं।

सामाजिकताका सार

मानवता असहाय पशुओंको मारकर खानेमें नहीं, बल्कि उनकी रक्षा करनेमें है। मनुष्य सृष्टिका सम्राट् इसलिये माना गया है; क्योंकि वह दूसरे जीवोंकी भी रक्षा और सहायता करता है, न कि उन्हें खा जाता है इसलिये। सम्राट् वही होता है जो कि अपनी प्रजाकी रक्षा करे। मानवसमुदायपर जंगलका वह कानून लागू नहीं होता, जहाँका राजा बाघ अन्य पशुओंको खा जाता है। मानव-जातिके सिद्धान्त कहीं ऊँचे हैं। हम दूसरे प्राणियोंसे सेवा ले सकते हैं, परंतु बदलेमें हमें उन्हें कुछ देना चाहिये। यही सामाजिकताका सार है।

प्राचीन वेदोंका कथन है कि—

सन्नुः अस्तु द्विपदे, सन्नुः अस्तु चतुष्पदे।

द्विपाद और चतुष्पाद सभी प्रसन्न रहें। वहाँ मन्त्र-द्रष्टा ऋषि मनुष्यका नाम न लेकर केवल द्विपाद ही कहते हैं और इस प्रकार द्विपाये और चौपाये—दोनोंको समान श्रेणीमें रखते हैं। यह हमारी सभ्यताकी वर्णन-शैली है। केवल इसी प्रकारकी मनोवृत्तिसे वास्तविक मानव-उत्थान हो सकता है। गाँधीजीने एक बार कहा था कि गाय करुणाकी मूर्ति है।

अन्तमें मैं संक्षेपमें यह पुनः कहता हूँ कि इस प्रकारका तर्क करना पूर्णरूपसे गलत है कि धर्म-निरपेक्ष राज्यमें गोहत्या-बंदीके लिये कानून नहीं बनाया जा सकता। साथ ही यह सोचना भी उतना ही गलत है कि गायकी केवल पूँछको पकड़कर ही हम अपनी आत्माको तो पवित्र कर सकते हैं, भले ही उसकी सेवाकी बिल्कुल परवा न करें। जो लोग गायकी पूजाके हामी हैं उन्हें पशुपालनकी वैज्ञानिक पद्धतिको जाननेकी चेष्टा करनी चाहिये। सरकार और जनता—दोनों ही यदि अपने दायित्वोंको समझ लेंगे तो कलकत्तेमें गायोंके लिये बहुत कुछ किया जा सकता है। कलकत्तेमें सर्वश्रेष्ठ नस्लकी गायोंका वध मानवताके उत्थानमें बहुत बड़ा बाधक है।

मोक्षदायिनी मृत्युका स्वागत और मृत्युके रूपमें भगवान्के दर्शन

[शास्त्रकी वाणी है कि जो मृत्युको निर्वाण मान लेता है, उसे मरनेपर मोक्षकी प्राप्ति होती है। इसीके अनुसार मृत्युको मोक्षदायिनी मानकर उसका स्वागत करना चाहिये। इतना ही नहीं, वस्तुतः मृत्युका स्वाँग रचकर स्वयं भगवान् ही आते हैं—ऐसा अनुभव करके मृत्युकी भयानकतामें भगवान्के सौन्दर्य-माधुर्यपूर्ण रूप-सुधाका पान करके उन्हींके चरणोंमें अपनेको समर्पण करना तथा उनमें घुल-मिल जाना चाहिये—]

मृत्यु! भयानक आयी तुम ले प्रियतम प्रभुका मधु संदेश।
तोड़ सभी मायाके बन्धन की मिथ्या ममता निःशेष॥
रहने कहीं न दिया तनिक भी असत् अहंकारका लेश।
चला दिया तुरंत उस पथपर, जो जाता प्रियतमके देश॥
जन्म-मरणके क्लेश, भविष्यत्के कर सभी नष्ट सविकार।
अमर बनाया, दिला दिया प्रभु-पदमें नित निवास-अधिकार॥
मुक्तिदायिनी प्रभुपद-प्रेम-प्रदायिनि मृत्यु परम सुखरूप।
करो कृतार्थ मुझे तुम लेकर निज प्रभावमें अमल अनूप॥
स्वागत-अर्घ्य कृतज्ञ हृदयका करो कृपा करके स्वीकार।
करता मैं शुचि सुरभित मन-सुमनोंसे पूजन बारंबार॥

× × × ×

भूला मैं, पहचान न पाया मृत्यु-वेशमें तुमको नाथ।
तुम्हीं रूप धर घोर मृत्युका, आये करने मुझे सनाथ॥
लीलामय लीला विचित्र अति, कोई भी न पा सका पार।
तुम्हीं पिलाते स्वयं कृपा कर रूप-सुधा निज मधुर अपार॥
कर आवरणभङ्ग तुमने ही मायाका कर पर्दा छिन्न।
देकर मुझे गाढ़ आलिङ्गन किया सदाके लिये अभिन्न॥

देशमें आसुरी सम्पदाका विस्तार और हमारा कर्तव्य

इस समय सारे विश्वमें ही बड़े जोरोंसे परिवर्तन हो रहा है और वह हो रहा है पतनोन्मुखी। इसका परिणाम होगा—दुःख, यातना, क्लेश, युद्ध और विनाश। इसका स्थूल कारण है—भोगपरायणता। भारतीय ऋषियोंके सिद्धान्तसे जीवनका लक्ष्य है—भगवत्प्राप्ति या मोक्ष और उसका साधन है त्यागपूर्ण विशुद्ध निष्काम कर्मयुक्त सर्वहितकारी जीवन—जीवनका प्रत्येक कार्य ही भगवत्प्रीत्यर्थ हो। इसीसे 'दैवी सम्पदा' भारतीय जीवनका स्वरूप है। आजके जगत्का लक्ष्य है—भोग-प्राप्ति और उसके साधन हैं—किसी भी प्रकारसे भोग प्राप्त हों—भले ही उसमें जीवमात्रका अकल्याण होता हो। इसीसे आजका मानव 'आसुरी सम्पदा'-मय हो रहा है और आसुरी बुद्धि स्वाभाविक ही आसुरी विचारों तथा क्रियाओंको ही महत्त्व देगी। यही कारण है, आज जगत् घोर पतनकारी विस्फोटके मुँहपर स्थित है। और पाश्चात्त्य शिक्षा-दीक्षा, भोगमूलक साहित्य तथा पाश्चात्त्य विचारधाराके प्रभावसे भारत भी अपने चिरन्तन सिद्धान्त तथा लक्ष्यसे च्युत होकर हिंसामय कम्यूनिज्म-जैसे निश्चित दुःखपरिणामी आसुरी विचार-प्रवाहमें बहने लगा है और द्रुतगतिसे बहा जा रहा है।

देशकी इस समय जो स्थिति है, उससे यह प्रत्यक्ष प्रकट है। भारतके कई प्रदेशोंमें खास करके पश्चिम बंगालमें जो कुछ हो रहा है, वह एक भयानक भविष्यका चित्र सामने लाता है। ऐसी अराजकता, उच्छृङ्खलता, परिणाम-विचार-शून्यता, अनुशासनहीनता, अशान्ति और हिंसा-प्रतिहिंसा-प्रवृत्ति इधर कभी नहीं हुई थी। केवल राजनीतिक क्षेत्रमें ही नहीं—शिक्षा-क्षेत्र (छात्र-शिक्षक), औद्योगिक क्षेत्र, क्रय-विक्रयके बाजार, महिलामण्डल, शासक-समुदाय—सभी इस प्रवृत्तिसे आक्रान्त हैं। यहाँतक कि नगर-निगमों, विधानसभाओं और संसदोंमें भी ऐसे अवाञ्छनीय कार्य होते हैं, जो सर्वथा अनिष्टकारक तो हैं ही, भारतकी, भारतीय त्यागकी तथा भारतके त्यागी देशभक्त नेताओंकी प्रतिष्ठाका नाश करनेवाले हैं!

आज पश्चिम बंगाल—उसके सबसे बड़े नगर कलकत्तेमें जो कुछ हो रहा है, सिलीगुड़ीमें जो कुछ लूट-मार तथा आग लगानेका घृणित कार्य हुआ है, वह बड़ा ही भयानक है। हमारी राष्ट्रीयताके विचार यहाँतक संकुचित तथा सीमित हो गये हैं कि आज एक प्रदेशमें भाषा तथा सीमाभेदके कारण अन्य प्रदेशीयका जीवन संत्रस्त या भयविह्वल हो गया है। सभी सशंकित हैं, कब क्या हो जाय, पता नहीं। सारा सामाजिक स्तर ही अस्त-व्यस्त हो रहा है। लूट-मार आगजनी होती है, कोई बचानेवाला, सुननेवाला नहीं; महिलाओंका अपमान होता है—कोई कुछ बोलता नहीं; रेलगाड़ियाँ—बसें रोकी जाती हैं, बसों तथा मोटरोंमें आग लगायी जाती है, दूकानें जलायी जाती हैं, गैरकानूनी भीड़ चाहे जिसको, चाहे जहाँ, चाहे जब घेर लेती है; कोई पूछनेवाला तथा बचानेवाला नहीं; रेलयात्रियोंपर पत्थर फेंके जाते हैं, विद्यालयोंपर आक्रमण होते हैं, शिक्षक तथा छात्र मारे जाते हैं। कोई रोकने-टोकनेवाला नहीं; परिणाम यह हो रहा है कि औद्योगिक संस्थान कल-कारखाने बंद होते जा रहे हैं। आर्थिक कठिनाइयाँ बढ़ रही हैं। जीवन-यापनकी वस्तुओंका मिलना कठिन हुआ जा रहा है। शिक्षाक्षेत्रोंमें भय व्याप्त हो रहा है और दीर्घकालसे बसे हुए शान्तिप्रिय लोग प्राणरक्षार्थ दूसरे स्थानोंपर जानेकी सोच रहे हैं। असमके लोगोंकी अन्य प्रान्तीयोंके प्रति दुर्भावना, महाराष्ट्रकी शिवसेना आदि भी यही भय उभाड़ रही हैं। गरीब जनताके कल्याणके नामपर गरीबोंका जीवन कष्टमय बनाया जा रहा है और राष्ट्र, देश तथा समाजको भूलकर व्यक्तिगत स्वार्थ-साधनको ही—भले ही उसमें दूसरोंका सर्वस्व नाश होता हो—कर्तव्य माना जा रहा है।

इस उच्छृङ्खलतामय यथेच्छाचारको निर्बाध बढ़ने देना कदापि उचित नहीं है। अतएव भगवान्के शरण होकर उनकी कृपापर विश्वास रखते हुए अपने प्रत्येक प्राप्त साधन तथा बुद्धिके द्वारा तुरंत ऐसे कार्य करने चाहिये, जिससे इस विनाशके प्रवाहमें कुछ बाधा उपस्थित हो, उच्छृङ्खल पथपर चलनेवाले लोगोंको उपदेश प्राप्त हो और वे अपनी भूल समझकर उसके लिये पश्चात्ताप करें और सही रास्ता अपनावें।

जो व्यक्ति या संस्थाएँ यह काम आंशिक रूपसे कर रहे हैं या करना चाहते हैं, उनको सक्रिय सहयोग देकर दृढ़

बनावें, जिससे उनके कार्यक्षेत्र तथा कार्यसमूह विशालताको प्राप्त होकर शीघ्र ही सत्फल उत्पन्न कर सकें। सबको अपने साधारण मतभेद तथा व्यक्ति या दलकी विघटनकारी भावनाओंको छोड़कर एक सूत्रमें बँधकर कार्य करना चाहिये। भारतीय ऋषि-मुनिसेवित धार्मिक भावोंका, भारतीय त्यागमयी विचारधाराओंका तथा बुद्धिमानीके साथ सद्भावोंका प्रचार, सत् साहित्यका प्रकाशन, रक्षादलोंका संगठन, प्रहरी टुकड़ियोंकी नियुक्ति, आर्थिक सहयोग, जनसाधारणमें साहस, चरित्रबल, उत्साह तथा सेवावृत्तिका उद्बोधन और समयपर आवश्यकतानुसार त्याग-बलिदानकी तैयारी—इन सभीके लिये क्रियात्मक विचार करना आवश्यक है। 'शुभस्य शीघ्रम्।'

गोरक्षा क्यों और कैसे करें ?

(लेखक—स्वामीजी श्रीकेशवपुरीजी वेदान्ताचार्य)

भारतके ग्रामोंमें एक पुरानी कहावत है—दूधों नहाओ पूतों फलो।' यह कहावत स्त्री-जातिमें प्रचलित है। कहावत बताती है कि किसी समय भारतीय जनता दूधसे स्नान करती थी। उसी भारतमें आज ओषधिके लिये दूध नहीं मिल रहा है, उसको प्राप्त करनेके लिये प्राणोत्सर्ग करनेकी स्थिति उत्पन्न हो गयी है। जिस भारतका प्रत्येक घर एक डेरीफार्म था, उस भारतकी यह दशा कि गोरक्षाके लिये मरणव्रतका संकल्प करना पड़ रहा है और भारतके कर्णधार तमाशा देख रहे हैं। कितनी लज्जाकी बात है!

गौके दूध, दही और घीको ऋषियोंने अमृत बताया है। दूध ही नहीं, जिस गौका मूत्र भी अमृतके समान है, उसी गौकी हत्या करनेके लिये आजके तथाकथित बुद्धिके ठेकेदार अर्थशास्त्री खुले आम वकालत करते हैं। इससे बढ़कर कलङ्ककी बात और क्या हो सकती है? ऐसे ही बुद्धिमानोंकी कृपा है कि आज हम विदेशोंके सामने नतमस्तक होकर गिड़गिड़ाकर अनाजके दानोंके लिये दयाकी भीख माँगते हैं। श्रीमैथिलीशरण गुप्तने कहा था 'जिसको अपने देश तथा जातिका अभिमान नहीं है, वह नरपशु है और मृतक-समान है' क्या हमारी दशा आज ठीक इसी प्रकारकी नहीं हो गयी है!

गौके दूधका महत्त्व

आयुर्वेदके ग्रन्थ 'सुश्रुत-संहिता'के सूत्रस्थानके ४५वें अध्यायके ५०वें श्लोकमें गोदुग्धके गुणोंका वर्णन करते हुए कहा है—गौका दूध कफको नहीं बढ़ाता, वह चिकना, टिकाऊ, रक्त-पित्त, वात एवं पित्तनाशक, रसायन (बुढ़ापा और व्याधिको दूर करनेवाला) मधुर रसवाला, जल्दी पचनेवाला, ठंडा तथा आयुको बढ़ानेवाला है। उक्त प्रसंगमें ही भैंसके दूधके गुणोंका वर्णन करते हुए कहा है—भैंसका दूध अत्यन्त कफकारक, मधुर रसयुक्त, जठराग्निको मन्द बनानेवाला, निद्रा लानेवाला, ठंडा तथा अधिक टिकाऊ है। बकरीके दूधको गौके दूधसे मिलता-जुलता बताया है। बकरीका दूध भूखको बढ़ानेवाला, मलको सुखानेवाला, श्वास, खाँसी तथा रक्त-पित्तनाशक, जल्दी हजम होनेवाला तथा समस्त रोगोंको दूर करनेवाला होता है। अब तीनोंके दूधमें कौन श्रेष्ठ है—इसपर विचार करें। बकरीका दूध यद्यपि उत्तम है; किंतु गौके दूधमें जो 'रसायन' नामका गुण ऊपर कहा है, वह उसमें नहीं है। गौका दूध टिकाऊ है, जब कि बकरीका दूध हल्का है। उसको पीनेपर थोड़ी ही देरमें भूख लग जायगी। गौके दूधमें आयुको बढ़ानेकी जो शक्ति है, वह बकरीके दूधमें नहीं है। इन दोनोंके बाद भैंसका दूध जीवनके लिये कितना उपयोगी हो सकता है—यह आप स्वयं समझ सकते हैं। गौके मूत्रको तो पीनेका भी विधान है। कितनी ही आयुर्वेदीय ओषधियाँ गौके मूत्रसे बनती हैं। आज अत्यन्त महँगी अंग्रेजी दवाओंको न खरीद सकनेके कारण गरीब जनता तड़पकर मर जाती है।

खाद्य समस्याका हल

दूधके अभावमें आजकी नयी पीढ़ीका स्वास्थ्य कितना

गिर गया है; इसपर विचार करनेके लिये अधिकारियोंके पास समय नहीं है। आजके बालकोंकी कायाको देखिये, यदि कोई पहलवान फूँक मार दे तो उड़ जायँ। शरीरमें पोषक तत्त्वोंका अभाव होनेसे आजकल लोग अनेक प्रकारके रोगोंसे पीड़ित रहते हैं। यदि पर्याप्त मात्रामें दूध, दही और घी खानेको मिले तो अन्न अधिक खानेकी आवश्यकता ही नहीं पड़ती। दूध, दही और घीकी तरावट रहनेसे शरीरको पर्याप्त मात्रामें रस प्राप्त होता है। इससे जठराग्निमें बार-बार खाद्य पदार्थोंकी आहुति देनेकी आवश्यकताको कम किया जा सकता है। इस प्रकार विदेशोंसे अन्नके लिये भीख नहीं माँगनी पड़ेगी तथा जनताका स्वास्थ्य भी अच्छा रहेगा।

अर्थशास्त्रीय पक्ष

गोहत्याका समर्थन करते हुए श्रीबी० एम० दाँडेकर तथा डोरविलन आदि अर्थशास्त्री तथा वैज्ञानिकोंका कहना है कि गोहत्यापर पूर्ण प्रतिबन्ध लगानेसे देशकी अर्थव्यवस्थापर घातक प्रभाव पड़ेगा। इन महाशयोंको सरकारका खजाना भरने तथा अपने भत्ते सुरक्षित रखनेकी तो बड़ी चिन्ता है; किंतु देशकी जनताका खजाना दिनोंदिन खाली होता जा रहा है तथा उसको रोटियोंके भी लाले पड़े हुए हैं—इसकी जरा भी चिन्ता नहीं है। केन्द्रीय खाद्य मन्त्रणालयद्वारा नियुक्त विशेषज्ञ समितिने कहा है कि गोहत्या बंद करनेसे खाद्य-स्थिति जटिल हो जायगी और डेरी आदिपर असर पड़ेगा। मैं कहता हूँ कि भारतकी जनताको आपके डेरी फार्मोंकी आवश्यकता नहीं है। भारतकी जनताको घर-घरमें डेरी फार्म बनाना है। इन महाशयोंसे मैं पूछता हूँ कि देशके करोड़ों नवजात शिशुओंको क्या आप गोमांस खिलाकर जीवित रक्खेंगे अथवा गायोंका रक्त उन्हें पिलायेंगे? आपके डेरी फार्मोंने देशकी जनताका कितना उद्धार किया है? विशेषज्ञ महानुभावोंका यह भी कथन है कि गायोंके मांस और चमड़ेसे विदेशी मुद्रा प्राप्त होती है। मैं पूछता हूँ कि यह विदेशी मुद्राकी भूख आपकी क्यों इतनी बढ़ गयी है? टैक्स-पर-टैक्स लगाकर आपलोगोंने जनताकी कमर तोड़ दी है। क्या आप और सरकार छाती ठोककर यह कह सकते हैं कि योजनाओंमें प्रतिवर्ष जो अरबों रुपये व्यय किये जाते हैं, उसके तीन हिस्सेका भी सदुपयोग होता है? यदि ऐसा हुआ होता तो आज प्रत्येक व्यक्तिके मनमें असंतोषकी भावना देखनेको न मिलती। गोपालनसे खाद्य-स्थिति सुधरनेकी बात ऊपर कही जा चुकी है। गायके गोबर और मूत्रसे जो खाद बनेगी, उससे अन्नके उत्पादनमें वृद्धि होगी और अरबों रुपयोंकी सरकारको बचत होगी,* यह बात आपकी बुद्धिमें क्यों नहीं बैठती? आप कहेंगे कि हम ट्रैक्टरोंसे बैलोंकी आवश्यकता पूरी कर लेंगे और रासायनिक खादसे गोबरका काम चला लेंगे। मैं पूछता हूँ कि आपके ट्रैक्टरोंने आजतक भारतकी गरीब जनताका कितना उपकार किया है? आपकी इन बिना सिर-पैरकी कृषि-विकास-योजनाओंने कितने ही गरीब किसानोंको भिखारी बना दिया है। भारत-जैसे गरीब देशमें आपकी रासायनिक खाद कुछ धनी किसानोंको भले ही लाभ पहुँचा सकती हो; किंतु आजतकका अनुभव बताता है कि साधारण किसानोंके लिये यह पूर्णरूपसे हानिकारक सिद्ध हुई है। उससे भूमिका सारा तत्त्व एक ही बारमें खींच लिया जाता है। जब कि गोबरकी खाद ठंडी होती है, उससे भूमिकी पोषक शक्ति बढ़ती है। इधर दो वर्षोंसे वर्षा न होनेके कारण अनेक राज्योंमें पीनेके लिये टैंकरोंसे पानी पहुँचानेकी स्थिति उत्पन्न हो गयी थी। उधर कंडला बन्दरगाहपर प्रतिमास ५०,००० (पचास हजार) टन रासायनिक खादका विदेशोंसे आयात हो रहा है, सम्भव है अन्य बन्दरगाहोंसे भी होता होगा। उस खादको भारत-सरकार क्या राशनकार्डोंपर वितरित करके जनताको खानेके लिये देगी? अथवा उसे सड़ाकर किसी रसायनका निर्माण होगा?

श्रीदाँडेकर महोदयने गोहत्याकी वकालत करते हुए कहा है कि गायोंकी हत्याकर उनके जन्म और मृत्युके बीच संतुलन कायम करना चाहिये। मैं दाँडेकर महाशयसे पूछता हूँ कि दूधका व्यवसाय करनेवाले अहीर, घोसी, गूजर तथा ग्वालोंपर गोहत्याका क्या प्रभाव पड़ता है। इसके कारणोंपर भी कभी आपने विचार किया है? ग्वाले आदिको दूधमें पानी और आरारोट क्यों मिलाना पड़ता है और

* इसी अङ्कमें प्रकाशित श्रीविनोबाजीके लेखमें इस विषयके आँकड़े देखिये। —सम्पादक

अपने परिवारका पोषण करनेके लिये उन्हें जनताके स्वास्थ्यके साथ खिलवाड़ क्यों करना पड़ता है;—क्या कभी इसपर सोचा है ? किसी ग्वाले या अहीरसे पूछकर उसकी कठिनाई-को समझने और दूर करनेका आपने प्रयत्न किया है ? गोहत्याके समर्थक इन वकीलोंसे मैं पूछता हूँ कि क्या कभी कसाईखानेपर जाकर यह जाननेका प्रयत्न किया है कि उसमें बेकार गायोंके नामपर अच्छी-से-अच्छी गौएँ क्यों काटी जाती हैं ? क्या इन लोगोंको यह पता है कि संविधानमें लिखित 'दूध देनेवाले पशु' आदि वाक्योंको तोड़-मरोड़-कर तथा मनमाने ढंगसे व्याख्याकर उपयोगी गायें हजारोंकी संख्यामें नित्य काटी जाती हैं ? यदि इन लोगोंने उपर्युक्त बातोंपर विचार किया होता तो इस प्रकारके अविवेक-पूर्ण वक्तव्य न दिये होते।

मद्रासमें चमड़ा-निर्यात-संवर्धन-परिषद्के अध्यक्ष श्री सी० के० डोरविलनको देशकी आर्थिक व्यवस्थाकी बड़ी चिन्ता है। ये कहते हैं कि चमड़ेसे ५ करोड़की आय होती है, उसका सरकारको घाटा होगा। आपका दूसरा तर्क यह है कि अवाञ्छनीय गायोंकी हत्यापर प्रतिबन्ध लगानेसे चमड़ेकी किस्म घटिया हो जायगी। इनके इस कथनसे ही यह स्पष्ट हो जाता है कि अच्छी किस्मकी गायोंकी हत्या करनेसे ही चमड़ेकी किस्ममें भारत बाजी मार सकता है। यह तो सीधी-सी बात है कि स्वस्थ, कम आयुवाली गायका चमड़ा ही अधिक मुलायम होगा; न कि जर्जर एवं मरणासन्न गायका। उत्तम गायोंको मारकर ही तो विदेशी महाप्रभुओंको प्रसन्न किया जा सकेगा। मैं पूछता हूँ कि क्या प्राचीन भारत चमड़े और मांसके व्यापारके बिना जीवित नहीं था ? क्या प्राचीन भारतमें जूता पहिननेवाले लोग नहीं थे ? यदि इन अर्थशास्त्रियोंको आर्थिक संतुलनकी इतनी चिन्ता है तो ५८ वर्षके बाद सरकारी एवं गैरसरकारी कर्मचारियोंको पैंशन और प्रोवीडेण्ट फण्ड क्यों दिये जाते हैं ? रिटायर होनेके बाद क्यों उन्हें गोली नहीं मार दी जाती ? इनकी बुद्धिके दिवालियेपनका एक और उदाहरण है कि गायका सम्बन्ध माताके साथ जोड़ना मूर्खता है। मैं तो समझता हूँ कि ये वैज्ञानिक बेसमझीकी सीमाको भी पार कर गये हैं। इनके-जैसे बुद्धिमान् तो अपनी जन्मदात्री मातासे भी माताका सम्बन्ध नहीं जोड़ते। लगता है कि भारतीय ग्रन्थोंका इन्होंने कभी स्पर्शतक नहीं किया है। वेदों तथा ब्राह्मणोंमें तो नदियों और वनस्पतियोंकी भी देवताके समान स्तुति की गयी है तथा उनकी पूजा की जाती है। इसका कारण यही है कि जो वस्तु मानव-जीवनमें जितनी अधिक उपयोगी है, उसका उतना ही अधिक आदर किया जाता है। गौके बराबर उपकारक तो जन्म देनेवाली माता भी नहीं है; क्योंकि जन्म लेनेके बाद अभाग्यवश उसके मर जानेपर गौ ही अपना दूध पिलाकर जीवनदान देती है—इसीलिये गौको माता कहा है। इसी प्रकार पृथ्वीको भी माता कहा गया है। कलको आप कहेंगे कि पृथ्वीका भी सम्बन्ध माताके साथ जोड़ना मूर्खता है। तब तो आपके मतसे देशकी सीमाओंकी रक्षाके निमित्त जो अरबों रुपयोंका वार्षिक व्यय किया जाता है, वह भी निरर्थक सिद्ध होगा। इतने महत्त्वपूर्ण प्राणीकी हत्याके लिये आप एड़ीसे चोटीतकका जोर लगा रहे हैं और वृद्ध मनुष्य जो कि अधिकांश परिवारोंको तथा स्वयं उनकी संतानोंको प्रत्यक्ष रूपमें भारस्वरूप प्रतीत होते हैं, उनके विषयमें मौन क्यों साधे हैं ? तरस आता है आप-जैसे बुद्धिमानों-पर ! अब इस विवादको अधिक न बढ़ाकर मैं भगवती शारदा-से प्रार्थना करता हूँ कि वे इन बुद्धिमानोंको सुबुद्धि दें।

गोरक्षा कैसे करें

अब विचार यह करना है कि गोरक्षा कैसे करें ? वस्तुतः यह एक गम्भीर प्रश्न है; किंतु असम्भव नहीं है। गोरक्षा-के सम्बन्धमें गोभक्तोंका महान् दायित्व है। आजकी विषम खाद्य-समस्यामें स्वार्थी मनुष्य गोमाताको वृद्धावस्थामें तथा दूध न देनेपर दर-दरकी ठोकरें और डंडे खानेके लिये लावारिशकी भाँति छोड़ देते हैं। और तो क्या ! कोई धर्मात्मा श्रद्धावश गोदान करता है तो अभी गौ ब्राह्मणके पास पहुँच भी नहीं पाती, उसके पहले ही ब्राह्मण बेचनेके लिये उसका सौदा तय कर लेता है। ऐसी गौ भी कसाईखानेमें पहुँचती हो तो आश्चर्य नहीं और भी बहुतसे दोष हैं। आजकल कुछ लोग गोरक्षाके लिये आन्दोलन करनेवालोंपर आक्षेप करते सुने गये हैं। उनकी शिकायत है कि आन्दोलन और प्रदर्शन करनेमें जो लाखों रुपये व्यय किये जाते हैं, उनसे यदि गोशालाएँ खोल दी जातीं तो अधिक अच्छा होता। ऐसे महानुभावोंको मालूम होना चाहिये कि गोशालाएँ हमारे

देशमें इस समय भी बहुत-सी चल रही हैं। यह दूसरी बात है कि गोशालाओंके नामपर एकत्रित धनका पूरा सदुपयोग नहीं हो पाता। साथ ही कुछ आदर्श गोशालाएँ भी इस देशमें चलती हैं। प्रश्न यह है कि क्या दो-चार गोशालाएँ (भले ही वे आदर्श हों) खोल देनेसे गौओंका कटना बंद हो जायगा ? क्या इतनेमात्रसे देशके करोड़ों मनुष्योंको पर्याप्त मात्रामें दूध मिल जायगा ? यदि यह सम्भव होता तो ७ नवम्बर १९६६ को दिल्लीमें जाकर प्रदर्शन करनेकी आवश्यकता सम्भवतः न पड़ी होती ओर सरकारको गोलियाँ चलानी न पड़ी होतीं। दिल्लीमें जो अशोभनीय काण्ड हुआ, वह बड़े दुःखका विषय है। ऐसा नहीं होना चाहिये था। जो होना था सो हो गया। आगे बुद्धिमत्ता इसीमें है कि सरकार कानून बनाकर सारे भारतमें गोवंशकी हत्या पूर्णरूपसे बंद कर दे। पर मैं इनसे पूछता हूँ कि क्या कृष्ण और गाँधीके देशकी सरकार इतना बड़ा काम कर सकेगी कि वह गौ, भैंस आदि सभी पशुओंकी हत्या बंद कर दे, जब कि प्रत्यक्ष दीख रहा है कि गोहत्यापर रोक लगानेकी बातसे ही सरकारके प्राण कण्ठमें आ रहे हैं। यदि सरकार सभी पशुओंकी हत्या बंद कराना चाहे तो वह आज ही कानून बना दे। मैं निश्चयपूर्वक कह सकता हूँ कि इससे सरकारका भला ही होगा, बुरा नहीं होगा। इससे यदि सरकारको कुछ आर्थिक हानि भी होती हो तो वह अन्य उपायोंसे पूरी की जा सकती है। व्यावहारिक तौरपर मैं तो यही कहूँगा कि पहले गोहत्या तो बंद हो, जिसके दूधके लिये करोड़ों बालक, युवक और वृद्ध छटपटा रहे हैं।

उपयोगी सुझाव

गोरक्षाके लिये कानून बनाना तथा गोसेवाकी व्यवस्था करना—इन दोनों कार्योंको एक साथ ही आरम्भ करना होगा। इसके लिये कुछ सुझाव यहाँ प्रस्तुत हैं।

१—आज जो गोरक्षा-महाभियान-समिति अखिल भारतीय स्तरपर बनायी गयी है, उसे भंग न किया जाय। उसका नाम 'अखिल भारतीय गोसेवा समिति' रखा जाय। यह समिति जिस प्रकार वर्तमानमें आन्दोलनके लिये जनसम्पर्क स्थापित कर रही है, उसी प्रकार गो-सेवाके लिये भी कार्य करे। प्रादेशिक एवं जिलेके स्तरपर समितियोंका संघटन हो। यदि केवल सरकारसे कानून बनवाकर ही कर्तव्यकी समाप्ति मान ली जायगी तो गोसेवा उचित रूपमें कभी नहीं होगी तथा सरकारके भरोसे रहनेसे भी काम नहीं चलेगा।

२—व्यापारियों, उद्योगपतियों तथा धार्मिक संस्थाओं-से धनसंग्रह किया जाय और भूमि खरीदकर उपयोगी गोशालाएँ स्थापित की जायँ।

३—गोशालाओंके साथ कुछ भूमि अवश्य रक्खी जाय, जिसमें गौओंके लिये चारा उगाया जा सके। उस भूमिमें कुएँ खोदे जायँ और कुँओंमें ट्यूबवेल, रहट आदि लगाये जायँ। यदि इससे भी जलकी पूर्ति नहीं हो तो सरकारको छोटी-बड़ी नदियोंमें बाँध बनानेके लिये प्रेरित किया जाय। छोटे-छोटे बाँध बनाना तो कृषिके लिये भी बहुत आवश्यक है। कल-कारखानोंपर ही ध्यान देनेसे अन्नकी समस्या नहीं सुलझेगी।

४—आज जो लोग गोरक्षा महाअभियान-समितिका विभिन्न क्षेत्रोंमें नेतृत्व कर रहे हैं, वे लोग अपने-अपने क्षेत्रोंकी गो-शालाओंका कड़ाईसे निरीक्षण किया करें तथा अव्यवस्थाओं-को दूर करें।

५—कुछ विशाल गोशालाएँ स्थापित की जायँ, जिनमें संयोगवश उपेक्षित लँगड़े, अशक्त पशु भी रक्खे जा सकें। साथ ही उनकी चिकित्साकी भी व्यवस्था हो सके। अहमदा-बाद नगरकी पिंजरापोल नामकी गोशाला इसी प्रकारकी आदर्श गोशाला है। छोटे-छोटे बाँध बनाकर नहरें निकालने-पर तो पशुओंकी उपेक्षाका प्रश्न ही नहीं उठेगा। इसके विपरीत खादके लिये उनकी सेवा ही होगी। बहुत अंशोंमें तो बूढ़े पशु अन्य पशुओंकी जूँठनसे ही जी जायँगे।

६—सभी धनीलोग तथा बड़ी-बड़ी धार्मिक संस्थाएँ स्वयं गौओंका पालन करें। इसका निरीक्षण भी गोसेवा-समितिको करना होगा।

७—गायोंकी नस्ल सुधारी जाय तथा विशेष दूध देनेवाली गायें और बलवान् साँड़ पैदा किये जायँ।

इतने कार्य यदि सभी गोभक्त मिलकर कर लें तो गोसेवा-सम्बन्धी बहुत-से प्रश्न हल हो जायँगे। तभी हमारी गोभक्ति सफल होगी। तभी गोमाताके प्राणोंकी रक्षाके साथ ही गोसंवर्धन भी होगा।

विदुषी बहू

(लेखक—चतुर्वेदी श्रीमदनमोहनजी 'मिश्र')

पति—क्योंजी ! यह क्या तमाशा है ? साढ़े नौ बज गये और अभीतक रोटी तैयार नहीं ?

पत्नी—तमाशा क्या है ? आज महरी आयी नहीं । बर्तन मँजें तब रोटी बने । खाना आज होटलमें खा लेंगे ।

पति—'खाना होटलमें खा लेंगे ।' ऐसे कह रही हो मानो होटलमें मेरी ससुराल है । महीनेमें १५ दिन खाना होटलमें खाया जायगा । तनख्वाह सब खानेमें ही चली जायगी; तब सब काम कैसे चलेंगे । बर्तन माँजनेसे हाथ नहीं घिस जाते । जरूरत पड़नेपर सब कुछ करना पड़ता है । मेमसाहब बननेसे कैसे काम चलेगा ? अब तुम बच्ची नहीं हो ! घर सँभालो, नहीं तो औंधे मुँह गिरोगी !

पत्नी—देखो जी ! रोज-रोज तुम मुझे ऐसे ही ताने मारा करते हो । सहनशक्तिकी भी कुछ हद होती है । तुम्हें ऐसी सेवा करानी थी तो किसी महरिन या महराजिनसे शादी करते । पढ़ी-लिखी अप-टू-डेट बीबी क्यों ब्याही ? किसी गरीबकी लड़की लाते, रायबहादुरकी लड़की क्यों लाये ? मेरे घरपर कहार और महराज, दो-दो नौकर सिर्फ खाना (बनाने) के लिये हैं । मैं रोटी बना लेती हूँ तो तुम मुझसे बर्तन भी रगड़वाना चाहते हो ? मुँह धो रक्खो ! मैंने बर्तन न रगड़े ! हा ! ब्याहसे पहले क्या-क्या अरमान थे ! सोचती थी सजा-सजाया बँगला रहनेको होगा । तीन-चार नौकर होंगे । मोटर सवारीको होगी ! रोज सिनेमा, पार्टी इत्यादि सैर-सपाटे होंगे ! लेकिन हाय रे तकदीर ! रहनेको छोटा-सा दो कमरेका—मकान । न नौकर न चाकर । सवारीको गधा भी नहीं ! बापके यहाँ थी तो हफ्तेमें चार-पाँच दिन सिनेमा देखने जाती थी । यहाँ महीनों बीत जाते हैं—न सिनेमा न थियेटर । न कहीं किसीसे मिलना न मिलाना । बाबू साहब पौने दस बजे दफ्तर जाते हैं, शामको छः बजे लौटते हैं । फूँ-फाँ करते हुए ! गधेकी लादीकी तरह फाइलोंका बोझ साथमें साइकिलपर आता है । वह तो कहो एक टूटी-सी साइकिल है जिसपर फाइलें लाद लाते हैं । नहीं तो, शायद सिरपर लादकर लाते । दिनभर दफ्तर, रातभर दफ्तर । अरे शामको दुनिया घूमने निकलती है । कैसे-कैसे सुन्दर कपड़े पहिने पति-पत्नियोंके जोड़े चुहल करते चले जाते हैं । यह सब देखकर मेरी तो छातीपर साँप लोट जाता है । जो गहने-कपड़े डैडीने शादीमें दिये थे, उनके अलावा तिरछा तिल देहपर नहीं ! नहीं, नहीं, अब यह सब सहन नहीं हो सकता ! ! ! मैं इस तरह तुम्हारे साथ नहीं रह सकती । मैं मायके चली जाऊँगी !

पति—अल्लाह ! इतना जहर भीतर-ही-भीतर घुल रहा है ? मायके क्यों जाओ ! तलाक दे दो ! अब तो हिंदुओंमें भी तलाक-प्रथा चल निकली है । फिर कहीं अपना मनमाना नया ब्याह रचाओ ।

(पिताजी आते हैं)

पिताजी—आज यह क्या हंगामा मचा हुआ है ! रोज तुमलोग झगड़ा किया करते हो । यह भले आदमियोंका पड़ोस है, कुँजड़ोंका मुहल्ला नहीं ।

बहू—मुझे मायके भेज दीजिये । सब झगड़ा समाप्त हो जायगा । मैं टहलनी नहीं कि बर्तन माँजूँ । मैंने बर्तन न माँजे ।

पुत्र—देखिये पिताजी ! आज महरी नहीं आयी तो भोजन नदारद ! आज माताजी जीवित होतीं तो मैं भूखा दफ्तर जाता ? हाय री तकदीर ! (चला जाता है)

पिताजी—बेटी ! मैंने तुम दोनोंकी बातें सुनी हैं । मुझे यह सब सुनकर दुःख भी हुआ और हँसी भी

आती है। बेटी! इस तरह घर सँभाल न सकोगी। तुम ठीक कहती हो कि तुम्हारे बापके यहाँ चार नौकर हैं। उनकी इतनी औकाद है वे खुद खा सकते हैं, चारको खिला सकते हैं। तुम्हारा पति निखट्टू तो है नहीं। महीनेमें ३००) (तीन सौ रुपये) लाता है। दिन-रात बेचारा काममें पिसा रहता है। बेटी! तुम्हें उसपर दया नहीं आती? ऐसे वाक्-बाण चलाओगी तो उसका हृदय चलनी हो जायगा। नतीजा क्या होगा। तुम्हारा प्रेम समाप्त हो जायगा। एक दूसरेसे नफरत करने लगोगे।

बहू—इससे तो मैं नौकरी कर लूँगी। किसीकी धौंस नहीं सहूँगी। पिताजी! मुझे आज रातको ही मेरे मायके भेज दीजिये। मैं इस घरमें पानी भी नहीं पिऊँगी; बस हद हो गयी।

पिताजी—मायके जाना चाहती हो तो चली जाओ; लेकिन मैं क्या कहकर तुम्हें भेजूँगा। 'बहू मेरे घर रहना नहीं चाहती, इससे भेज रहा हूँ'। सोचो तो बेटी! यह क्या अच्छा लगेगा?

बहू—नहीं भेज सकते तो बाप-बेटे घरमें रहिये। मैं अकेली चली जाऊँगी। मैंने घरका रास्ता देखा है।

पिताजी—शावाश बेटी! तुम बड़ी बहादुर हो। मायके विना बुलाये क्यों न चली जाओगी? लेकिन मैं तुम्हें इन बातोंका नतीजा समझा दूँ। तुम चाहे जितनी पढ़ी-लिखी तथा होशियार हो किंतु मेरे सामने बच्ची हो। मैं अपनी भरसक, बेटी! तुम्हें गलत रास्तेपर नहीं चलने दूँगा। आज यदि लल्लूकी माँ होतीं तो क्या लल्लू भूखा दफ्तर चला जाता? बेटी! सच मानना, जब वह बीमार थीं तब कमजोरीके कारण उनसे चला-फिरा नहीं जाता था। लल्लू छोटा था। मैं हठ करता था कि रसोई मैं बना लूँगा। लेकिन मजाल थी कि मैं चूल्हा फूँक सकूँ! जानती हो बेटी! उन्होंने क्या उत्तर दिया था?

'जबतक मेरे शरीरमें प्राण है और मैं अशक्य नहीं हो जाती, मैं आपसे रोटी बनवाकर अपनी माँकी कोख नहीं लजाऊँगी' और बेटी! यही तुम्हारी सासने कर दिखाया। घिसट-घिसटकर रोटी बनायी, लेकिन जबतक तुम्हारी ननद नहीं आ गयी, उन्होंने मुझे रोटी नहीं बनाने दी। अब तुम्हीं सोचो, लल्लू घरसे दुखी होकर गया है तो क्या वह होटलमें खाना खायेगा? वह एक लोटा पानी पीकर रह जायगा। चित्त दुखी होनेसे काम नहीं होगा। छोटी-छोटी बातोंपर क्रोध आयेगा। कहीं किसी अफसर अथवा मातहतसे न झगड़ पड़े। इधर न मैं खाना खा सकूँगा और न बेटी! तुम्हीं खा सकोगी। माना, तुम्हें अपने मायकेका रास्ता मालूम है और तुम आज रातकी गाड़ीसे ही मायके चली जाओगी; लेकिन यह मत समझना कि वहाँ तुम्हारा मान होगा।

माँ-बापकी दुलारी लड़कीका घरपर जो अधिकार ब्याहके पहिले होता है, उसका आठवाँ हिस्सा भी विवाहके बाद नहीं रह जाता। बेटी! जरा सोचो तो जब तुम अकेली अपने मायके पहुँचोगी तो तुम्हारे माता-पिता, भाई-भौजाई, बहिन तथा नौकर-चाकर सभी चौंकेंगे कि क्या कारण हुआ कि रानी बिटिया अकेली आयी। नौकर-चाकर तथा पास-पड़ोसी आपसमें फुसफुस करेंगे 'अरे, मालिकसे बनी नहीं होगी। आजकलकी पढ़ी-लिखी लड़कियोंके ढंग ही निराले हैं। गिलोय वैसे ही कड़वी, फिर नीम चढ़ी। रायसाहबकी लड़की और लाड़ली। और क्या चाहिये?'

सायकी सखी-सहेली मुसकरायेंगी और कहेंगी 'क्या खटपट कर आयीं?' तब बेटी! क्या जवाब दोगी। ऐसी एक-एक बात तुम्हें तीरकी तरह लगेगी। अगर किसीसे कुछ कहा-सुनी हो गयी तो ताना मिलेगा 'ऐसी ही थीं तो मायके रोटी तोड़ने क्यों आयीं। खसमसे लड़कर अब मायकेपर अधिकार जमाने

आयी हैं ।' बेटी ! रायबहादुर साहब अथवा तुम्हारी माँ चाहे कुछ न कहें, पर किस-किसका मुँह पकड़ लोगी। तब खयाल आयेगा कि यह बुड्ढा ठीक कहता था। पहले इसकी बातें जहर जरूर लगती थीं, किंतु बुड्ढा कहता ठीक था। और बेटी ! एक बात और है, एक बार क्रम बिगड़ जानेपर फिर आसानीसे नहीं सुधरता। एक बार तुम घरसे या ससुरालसे अकेली निकली फिर जैसे 'धनौंचीसे उतरा घड़ा फिर धनौंचीपर नहीं चढ़ता' उसी तरह ससुर और मालिकके मनसे उतर जाओगी। तुमने रामायणमें पढ़ा होगा कि सती पार्वतीको बिना बुलाये अपने पतिकी आज्ञाके प्रतिकूल मायके जानेपर कितना अपमान सहना पड़ा, जिसके पश्चात्तापमें उन्हें प्राणत्यागतक करना पड़ा। इसलिये बेटी ! कोई काम सहसा न कर बैठना जिसमें पीछे पछताना पड़े।

बहू—पिताजी ! आप ठीक कहते हैं। मायके जाना उचित नहीं। मैं अब कोई नौकरी कर लूँगी; किंतु ऐसे अपमानका जीवन नहीं व्यतीत करूँगी।

पिताजी—"शाबाश बेटी ! देखो, कितनी सरलतासे एक बात तुम्हारी समझमें आ गयी। यही फर्क जाहिल और विदुषीमें होता है। भगवान् न करे लट्ठ स्त्री किसीके पाले पड़े। पढ़े-लिखेकी समझमें जब बात आ जाती है तो वह कुन्दन हो जाता है। मुझे तुम्हारी समझपर गर्व है। अच्छा, अब देखो दूसरी बात लो। तुम बेटी ! ठीक कहती हो कि 'मैं नौकरी कर लूँगी और चैनसे रहूँगी।' अच्छा, अब नौकरीमें चैनकी व्याख्या सुनो। तुम हमलोगोंसे अलग होकर नौकरी करने जाओगी। नया घर बसाओगी। तुम बी० ए० पास हो—किसी स्कूलमें मास्टरी मिल गयी तो सवा सौ—डेढ़ सौ अधिककी नौकरी मिलनेसे रही। अब तुम बँगलेमें रहना चाहती हो, महरी-महाराज रखना चाहती हो तो बेटी ! समझ लो, आजकलके समयमें ५०) महीना तो इसी मकानका किराया देते हैं जो तुम्हें पसंद नहीं। नौकर अगर दो न रक्खे, एक भी रक्खा तो ५०) महीना नौकरको ही देना पड़ेगा। अब ईंधन, मसाला, नाज, पानीमें कम-से-कम १००) महीना खर्च होगा; फिर सिनेमा, पार्टी, सैर-सपाटे वेषभूषाके लिये, कपड़े-गहनोंके लिये कहाँसे लाओगी ? फिर सोचो, एकाकी जीवन क्या पसंद आयेगा ? फिर बेटी ! पिछला जीवन याद आयेगा। फिर इस बुड्ढेकी बातें याद आयेंगी।

बहू—पिताजी ! आप ठीक कहते हैं। मुझसे बड़ी गलती हुई। इस नयी रोशनीके जमानेमें नये रास्तेपर चलनेसे पग-पगपर ठोकरें लगेंगी। आप मुझे क्षमा करें, (पैर छूती है) आगे अपराध न होगा।

पिताजी—शाबाश बेटी ! शाबाश। मुझे तुमसे ऐसी ही आशा थी। इसी कारण मैं पढ़ी-लिखी बहू विवाहनेके पक्षमें था। मैं जानता था कि पढ़ी-लिखी स्त्रीको यदि एक बार सही रास्ता दिखा दिया जाय तो वह मोटरकी तरह दौड़ेगी। बेटी ! आज मेरा रोम-रोम आशीर्वाद दे रहा है 'दूधो नहाओ, पूतो फलो' (बहू, बर्तन माँजती है, झाड़ू लगाती है तथा खाना बनाती है, पतिदेव आते हैं। चुपचाप टाई, कोट उतारकर खूँटीपर रख देते हैं। पाजामा चप्पल पहनकर बाहरकी ओर चल देते हैं।)

पत्नी—अजी ! कहाँ चले ? दिनभर खाया-पिया नहीं, चलो खाना तैयार है। गरम-गरम खा लो।

पति—"अरे ! खाना तैयार है। क्या पिताजीने दूसरी महरी लगा दी ? तुम तो मायके जा रही थीं, बड़े बापकी बेटी हो न ?

पत्नी—(पैरोंपर गिरकर) क्षमा कीजिये नाथ ! मैं आजकलकी नयी रोशनीकी चकाचौंधसे भटक गयी थी। अब पिताजीने ठीक रास्ता दिखा दिया है। आगे गलती नहीं होगी।

पति—(स्त्रीको गलेसे लगाता है) आज मेरा जीवन धन्य हुआ ।

पिताजी—तुम दोनों इसी तरह घुलो-मिलो । आज मेरा कुल पवित्र हुआ । आज मेरी वह सच्ची गृहलक्ष्मी मिली । मेरे सारे स्वप्न सत्य हुए ।

पिताजी—चलो बेटा ! भोजन करो । आज मेरी बहू-रानीने वर्तन माँजे, झाड़ू लगाया, चौका लगाया है और सुन्दर सुस्वादु भोजन बनाया है । (पिता-पुत्र बैठकर भोजन करते हैं, बहू परोसती हैं ।)

(पटाक्षेप)

धर्म और राष्ट्र

[प्रश्नोत्तर]

(लेखक—श्रीराजेन्द्रप्रसादजी जैन)

—हमें इस बातका गर्व है कि हमारा राष्ट्र 'धर्म-निरपेक्ष' है ।

—राष्ट्रका अर्थ यदि जनता है तो यहाँका राष्ट्र 'धर्म-निरपेक्ष' नहीं है और राष्ट्रका अर्थ यदि शासकीय नीतिसे किया जाय तो वह भी रूसापेक्ष, चीनापेक्ष, अल्पसंख्यकापेक्ष, नवमतापेक्ष है; धर्म-निरपेक्ष नहीं है । सम्भवतः धर्मनिरपेक्षका अर्थ तुम अपनी भाषामें यही लेते हो ।

—धर्म-निरपेक्षिताका अर्थ स्पष्ट नहीं हो सका । भारतमें जितने मुँह हैं उतने ही धर्म-निरपेक्षिताके अर्थ हैं । संविधान-को इसे स्पष्ट करना चाहिये था । आपकी यह बात मेरी समझमें आती है ।

—संविधानके पश्चात् भी विधायक और शासक यदि चाहते तो इसे स्पष्ट कर सकते थे, परंतु उन्होंने ऐसा उचित नहीं समझा । धर्म-निरपेक्षिता राजनीतिक अवसरवादिताका एक और साधन बन गयी । यहाँतक कि चुनाव भी धर्म-निरपेक्षिताके नामपर हारे और जीते जाने लगे । धर्म-निरपेक्षिता यदि सत्य है तो उसका एक जीवन-दर्शन होना चाहिये । भारतीय धर्म-निरपेक्षिताके पीछे न तो कोई तत्त्व-चिन्तन है, न उसकी कोई रूप-रेखा है । धर्म-निरपेक्ष राष्ट्रमें किसी भी प्रत्याशयीका समर्थन इस आधारपर होना चाहिये कि वह कितना धर्म-निरपेक्ष है, न कि इस आधारपर कि उसका सम्बन्ध अल्पसंख्यकोंके धर्मसे है या बहुसंख्यकोंके । तुम स्वीकार करोगे कि धर्म-निरपेक्षिताका अर्थ शासनकी सत्ता अल्पसंख्यकोंको सौंप देना नहीं है । धर्म-निरपेक्षिताका अर्थ यह नहीं होना चाहिये कि बहुसंख्यक समुदायमें उत्पन्न होना एक अभिशाप और अल्पसंख्यकोंमें जन्म लेना एक वरदान है ।

—नहीं होना चाहिये, स्वीकार करता हूँ । यदि अल्पसंख्यकों-के हाथमें ही शासन सौंप देना धर्म-निरपेक्षिता है तो फिर कहना पड़ेगा कि हरिहर बुक्क, हमीर, कुम्भ, साङ्गा, प्रताप, राजसिंह, शिवाजी, गुरु गोविन्दसिंह, रानी लक्ष्मीबाई, तिलक और गांधी व्यर्थ ही लड़े । ११९२ से १९४७ तक भारत-में कुछ अपवादोंको छोड़कर सदैव अल्पसंख्यकोंका राज्य रहा है । महात्मा गांधीने स्वयं कहा था कि 'हमें स्वराज्य उन १० प्रतिशतके लिये नहीं चाहिये, जिनके हाथमें आज भी सत्ता है, अपितु उन ९० प्रतिशतके लिये चाहिये जो आज पददलित हैं ।'

—परंतु आज तो भारतमें धर्म-निरपेक्षिताके नामपर ९० प्रतिशत जनताके धर्म, आचार-विचार, सभ्यता और संस्कृतिको नष्ट करनेका प्रयत्न किया जा रहा है । अंग्रेजी-को अनन्तकाल तक बनाये रखना उसी १० प्रतिशतके शासनको बनाये रखनेका कुचक्र है, जिसे ब्रिटिश युगमें भी स्वराज्य प्राप्त था । क्या धर्म-निरपेक्षिताका यही अर्थ है कि भारतकी ९० प्रतिशत जनता सदैव घुटनका अनुभव करती रहे और उसके लिये समग्र विश्वमें एक भी कोना ऐसा न हो जहाँ बैठकर वह अपने विश्वास और अपनी आस्थाके अनुसार अपना जीवन-यापन कर सके ?

—यह बात मैं स्वीकार कर चुका कि धर्म-निरपेक्षिता-का अर्थ हिंदू-धर्म और हिंदू-संस्कृतिका उन्मूलन नहीं होना चाहिये ।

—और न उसका अर्थ भारतको उसके अतीतसे काट देना ही है । वेदोंके प्रथम उद्घोषसे लेकर गौ-सत्याग्रहतक हमारी एक अखण्ड सांस्कृतिक धारा है । हम उसे टूटने नहीं देंगे । आकाशरूपसे जिन्होंने देशको खण्डित करवाया है, वे विघटनकारी तत्त्व अब भी भारतमें सक्रिय हैं । वे उसे कालरूपसे भी खण्डित करना चाहते हैं । तुम स्वीकार करोगे कि स्वराज्यका अर्थ मुगल-राज्यकी स्थापना नहीं है । क्या हमने दिल्लीके सिंहासनपर अकबर और औरंगजेबको

प्रतिष्ठित करनेके लिये ही स्वराज्यकी लड़ाई लड़ी थी।

—स्वीकार करता हूँ।

—तो फिर ऐसा क्यों हो रहा है ? जिस भारतमें धर्म-निरपेक्षिताके नामपर गोहत्यापर प्रतिबन्ध नहीं लग सकता, उसमें जिहादके फतवोंको राज्यका समर्थन कैसे मिल रहा है ? जानते हो जिहाद एक हिंसात्मक प्रेरणा है, घोषणा है, इस्लामके नामपर संसारसे काफिरोंको मिटा देनेकी, जिसका समर्थन कर रहा है भारत—धर्म-निरपेक्ष, अहिंसावादी, अन्ताराष्ट्रीय मामलोंमें तटस्थ भारत जिसकी ९० प्रतिशत जनता काफिर है। धर्मनिरपेक्षिताकी साङ्गोपाङ्ग व्याख्या चाहिये। यह क्या कि जिन संस्थाओंके सदस्य मुसल्मान-ईसाई सब हैं और सब हो सकते हैं, उन्हें तो साम्प्रदायिक ठहराया जाय और जिस राजनीतिक संगठनके सदस्य केवल मुसल्मान और मुसल्मानोंमें भी केवल सुन्नी मुसल्मान हो सकते हों वह राष्ट्रीय समझी जाय। जो संस्थाएँ मुसल्मानोंके भारतीयकरणमें लगी हैं, वे साम्प्रदायिक और जो उनके लिये पृथक् भाषा, पृथक् लिपिकी माँग रखकर उनमें अलगावकी मनोवृत्तिको प्रोत्साहन दे रही हैं वे राष्ट्रीय ! मैं पूछता हूँ जिन तत्त्वोंने भारतका विभाजन कराया था, क्या विभाजन होते ही वे दो राष्ट्रोंके सिद्धान्तको भूल गये ? भारत छोड़कर चले गये ? यदि नहीं तो उन्हें भारतीय बनानेका कौन-सा कार्य-क्रम शासनके पास है ?

यही कि हम स्वयं अभारतीय बनते जा रहे हैं। जब भारतका उसके अतीतसे सम्बन्ध टूट जायगा, जब यहाँके तीज-त्यौहार यहाँकी भाषा-वेष-भूषा, यहाँका खान-पान, आचार-विचार, यहाँकी सभ्यता-संस्कृति, यहाँकी मर्यादाएँ और आस्थाएँ नष्ट हो जायँगी तो सारा भारत स्वतः ही एक प्रकारका पाकिस्तान बन जायगा और तब वह पुराने पाकिस्तानसे मिलकर एक अखण्ड विशाल मुस्लिम राष्ट्रके रूपमें परिणत हो जायगा। भारतके विघटनकारी तत्त्व इसी ओर प्रयत्नशील हैं। क्या कारण है कि जो मुस्लिम विधायक तथा संस्थाएँ भारतमें धर्म-निरपेक्षिताके गुण गाते हैं वे पाकिस्तान, ईरान, तुर्क तथा अरबका नाम आते ही सारी धर्म-निरपेक्षिता भूल जाते हैं ? जब धर्मसापेक्ष देश उनकी दृष्टिमें पवित्र और पूजनीय हैं तो यदि भारत भी धर्मसापेक्ष हो तो उन्हें आपत्ति क्यों ? जो ईसाई भारतको धर्मनिरपेक्ष रखना चाहते हैं वे इंग्लैंड, फ्रांस और पुर्त्तगालको धर्म-निरपेक्ष बनानेके लिये क्या कर रहे हैं ? क्या सारी धर्म-निरपेक्षिता भारतके ही भाग्यमें बदी है ? धर्म और चरित्रका घनिष्ठ सम्बन्ध है। यदि भारत धर्मसापेक्ष हो गया तो फिर यहाँ चरित्रकी पूजा होने लगेगी जो हमारे अधिकांश राजनेताओंमें नहीं है, अधिकारियों तथा राजकर्मचारियोंमें नहीं है और तब समाजका नेतृत्व उनके हाथोंसे निकलकर चरित्रवान् व्यक्तियोंके हाथोंमें पहुँच जायगा, जिसे हमारे उद्योगपति और व्यवसायी भी नहीं चाहते। वे भी नहीं जो व्यक्तिगतरूपसे धार्मिक हैं। रीता फारिया और नरगिसके युगमें फिर सीता-सावित्रीकी पूजा होने लगेगी। फिर वर्ण और जातियाँ अपनी मर्यादामें आ जायँगे और उनके नामपर चुनाव जीतनेकी आशा धूलमें मिल जायगी। भारतमें भ्रष्टाचार और विघटनको पनपना है। अतः भारतको धर्मनिरपेक्ष ही रहने दो।

—तो क्या धर्मके विना चरित्रका विकास नहीं हो सकता ? क्या धर्मके बिना संगठन नहीं हो सकता ?

—नहीं, तुम कहोगे कि बहुत-से व्यक्ति धार्मिक न होते हुए भी चरित्रवान् होते हैं; परंतु ऐसे व्यक्ति वे होते हैं जिनकी नाड़ियोंमें कई पीढ़ियोंका धार्मिक रक्त होता है, जिनके संस्कार धार्मिक परिवार एवं समाजमें रहनेसे धार्मिक बन जाते हैं, वैसे ही जैसे शिक्षित परिवारका बेपढ़ा-लिखा सदस्य भी बहुत शिष्ट और सुशिक्षित होता है अथवा सूखे चने चबानेवाले राजकुलोंके सदस्य भी सुन्दर और बलिष्ठ होते हैं। धर्म-निरपेक्ष वातावरणकी दो-चार पीढ़ियाँ बीत जानेपर उनका फल दृष्टिगोचर होता है। क्या तुम नहीं देखते कि अब हमारी हिंदू-जातिमें तिलक, गांधी, लाजपत राय, सुभाष, पटेल और जवाहरलालने जन्म लेना छोड़ दिया है ? क्या तुम नहीं जानते कि इतिहास-के कराल गालसे वे ही जातियाँ जीवित बची हैं जिनकी बुद्धिके ऊपर किसी ईश्वरीय स्वतः प्रमाण ग्रन्थका राज्य था—हिंदू, मुसल्मान, यहूदी, पारसी। और अपनी बुद्धिसे संसारको चकाचौंध करनेवाले रोम, मिश्र, यूनान सब मिट गये, केवल बुद्धिके सहारे न तो चरित्र ही ठहर पाता है और न संगठन। चरित्र और संगठन दोनोंके लिये आवश्यकता है निष्ठाकी, एक रागात्मक भावनाकी, जिसे बुद्धि देनेमें असमर्थ है। मैं यह नहीं कहता निष्ठा और राग बुद्धिविरोधी होने चाहिये। मेरा यह कहना है बुद्धिपर भी अंकुश लगने-की आवश्यकता है; क्योंकि बुद्धि प्रायः स्वार्थ अथवा अहं-की ओर जाती है। आज धर्महीन भारतकी बुद्धि अहंकी ओर

जा रही है। वह आत्मप्रवञ्चक और मनोराज्यका प्राणी बन गया है। पाकिस्तानको यह कहनेका अवसर मिलेगा, पाकिस्तानको वह कहनेका अवसर मिलेगा। संसारके सामने सिद्ध कर देंगे। इसके आगे कोई आधार हमारे राजनीतिज्ञों-को नहीं मिल रहा है।

—यह तो तुम भी स्वीकार करोगे कि हमारे राजनीतिज्ञोंने धर्मनिरपेक्षिताका अर्थ धर्मद्रोह नहीं लिया है।

—जिसका ज्वलन्त उदाहरण हिंदूकोड है। अवश्य ही धर्मनिरपेक्षिताका अर्थ इस्लामद्रोह एवं ईसाई-धर्मद्रोह नहीं है; क्योंकि मुस्लिमकोड और ईसाईकोड नहीं बन सके हैं; परंतु हिंदू-धर्मद्रोह तो हो सकता है। यदि मुसल्मान और ईसाई-धर्ममें हस्तक्षेप नहीं हो सकता तो फिर हिंदूधर्ममें ही क्यों हस्तक्षेप होता है? क्या हिंदूकोड पारित करानेमें पं० नेहरूके त्यागपत्रकी धमकी काम नहीं कर रही थी? क्या हिंदूकोडको दलकी प्रतिष्ठाका प्रश्न नहीं बनाया गया? क्या कांग्रेसमें भी हिंदू-बहुमत हिंदूकोडके विरुद्ध नहीं था? क्या हिंदूकोडके पक्षमें अहिंदुओं और जाति-च्युत हिंदुओंने भी मतदान नहीं किया? क्या तलाकके समर्थनमें उन विधायकोंके भी मत नहीं पड़े जिनमें तलाक पहलेसे प्रचलित है? धर्मनिरपेक्षका अर्थ धर्मद्रोह नहीं होना चाहिये और साथ-ही-साथ उसका अर्थ धर्मके प्रति उदासीनता भी नहीं होना चाहिये। क्या तुम बतलाओगे कि ९० प्रतिशत जनताकी धार्मिक निष्ठाको दृढ़ करनेके लिये इन बीस वर्षोंमें राज्यने क्या किया? क्या तुम बतला सकते हो कि चीन और पाकिस्तानसे मोर्चा लेनेके लिये जिस मनोबलकी आवश्यकता है वह कौन देगा? और वह अबतक कहाँसे आया है? स्वराज्यकी लड़ाई लड़नेके लिये मनोबल कहाँसे आया था और मिस्टर जिन्नाकी योजना किसने विफल की थी?

—धार्मिक निष्ठाको दृढ़ करनेका काम धर्माचार्योंका है न कि राजनीतिज्ञोंका। हिंदुओंके धर्माचार्यों, साधु-संन्यासियों, महन्तों, पुरोहितों और पुजारियोंने अबतक हिंदूधर्मके लिये क्या किया? अकेले निजाम हैदराबादने उर्दूके लिये जो किया है उसका एक चौथाई भी सारे धर्माचार्योंने मिलकर संस्कृतके लिये नहीं किया।

—स्वीकार है। हमारा पुरोहितवर्ग आज निष्प्राण और निस्तेज हो रहा है तो क्या इसी कारणसे राज्यका धर्मके प्रति कोई कर्तव्य नहीं रहता? हमारे धर्म और संस्कृतिका उन्नयन हो, इसीलिये स्वतन्त्र राष्ट्रकी कल्पना की जाती है। कुरसी और अर्थ तो दासतामें भी प्राप्त होता है और यदि पद और अर्थ ही जीवनका लक्ष्य है तो बहुतसोंकी तो स्वतन्त्र होनेपर पद तथा अर्थकी स्पष्ट हानि होती है। शासक और शासित तथा धनी और निर्धनको एक सूत्रमें बाँधने-वाली रज्जु धर्म एवं संस्कृतिकी ही है, पद तथा अर्थकी नहीं। आज भारतमें शासक और शासितोंमें भावात्मक एकता नहीं, प्रदेश-प्रदेशमें भावात्मक एकता नहीं; क्योंकि हम संगठनका आधार राजनीति एवं अर्थको बनाते हैं जबकि किसी सांस्कृतिक चेतना एवं धार्मिक भावनासे शून्य राजनीतिक एवं आर्थिक संगठन क्षणस्थायी होते हैं। उनमें बहुत शीघ्र विघटनकी क्रिया-प्रक्रिया आरम्भ हो जाती है—

We build in vain unless the Lord build with us.

बिना धार्मिक निष्ठाके किसी भी प्रकारका निर्माण असम्भव है।—इलियट

क्या हमारे विधायकोंने कोई ऐसी योजना बनायी कि जिससे हमारे तीज-त्यौहार और पर्वोंमें अधिक उल्लास आ सके? क्या उन्होंने विधवाओंको ब्रह्मचर्यमें दृढ़ करनेके लिये कुछ किया? क्या उन्होंने जनताको ईश्वराभिमुख होनेके लिये कोई प्रेरणा दी? प्राचीन साहित्यके प्रकाशन, प्राचीन मन्दिरोंके जीर्णोद्धार, गोरक्षा, गोपालन, जनताको शुद्ध भोजन और पानी मिल सके इस सबकी क्या राजनीतिज्ञोंने कभी कोई आवश्यकता समझी? यदि नहीं, तो समझ लो भारतीय राष्ट्रका आधार बहुत कच्चा है। इस्लाम अथवा कम्युनिज्मकी एक ही चपेटमें वह लड़खड़ाकर गिर पड़ सकता है। यदि राजनीतिज्ञोंके पास जनताकी भावात्मक एवं आध्यात्मिक प्यास बुझानेके साधन नहीं हैं तो उन्हें उन लोगोंके लिये मार्ग छोड़ देना चाहिये जिनके पास हैं।

—मार्ग छुटा-छुटाया है। भारत जनतन्त्रवादी राष्ट्र है। वर्तमान विधायकोंको पछाड़कर स्वधर्म और स्वसंस्कृतिके उपासकोंके हाथमें सत्ता सौंप देनी चाहिये।

—तो फिर चलो। तुम और हम मिलकर घर-घर अलख जगा दें—

कोटि कोटि कंठ कल-कल निनाद कराले।

करोड़ों कण्ठोंसे ललकार दें भारत एक स्वतन्त्र राष्ट्र है, एक हिंदू राष्ट्र है, एक आर्य राष्ट्र है।

पाकिस्तान, चीन, जापान, रूस, इंग्लैंड और अमेरिकाकी जनताके सामने उत्तरदायी न होकर भारतके शासकोंको भारतकी जनताके सामने उत्तरदायी होना पड़ेगा।

कोटि कोटि कंठ कल-कल निनाद कराले।

करोड़ों कण्ठोंसे ललकार दें भारत एक स्वतन्त्र राष्ट्र है, एक हिंदू राष्ट्र है, एक आर्य राष्ट्र है।

धर्म-निरपेक्षिताका अर्थ धर्मद्रोह तथा धर्मके प्रति उदासीनता नहीं है। धर्मनिरपेक्षिताके नामपर भारतकी ९० प्रतिशत जनताको उसके न्यायपूर्ण अधिकारोंसे वञ्चित नहीं किया जा सकता। धर्मनिरपेक्षिताकी आड़में हम भारतको इस्लामिस्तान अथवा कम्युनिस्टस्तान नहीं बनने देंगे। धर्म-निरपेक्षिताकी आड़में हम विघटनकारी तत्त्वों और जिहादी जनूनियोंको नहीं पनपने देंगे।

कोटि कोटि कंठ कल-कल निनाद कराले।

करोड़ों कण्ठोंसे ललकार दें भारत एक स्वतन्त्र राष्ट्र है, एक हिंदू राष्ट्र है, एक आर्य राष्ट्र है।

धर्मनिरपेक्षिताका अर्थ केवल इतना ही है कि प्रत्येक व्यक्तिको अपने धर्मानुसार जीवन-यापनकी पूर्ण स्वतन्त्रता होगी, जबतक कि उसकी क्रियाएँ जनस्वास्थ्य, सदाचार, दूसरे धर्मोंके मौलिक अधिकार और राष्ट्रकी भावात्मक एकतापर चोट नहीं करतीं। धर्मनिरपेक्षिताका अर्थ केवल सम्प्रदाय-निरपेक्ष है, संस्कृति-निरपेक्ष एवं राष्ट्र-निरपेक्ष नहीं। धर्मनिरपेक्षिताकी आड़में हम राजनीतिक अवसरवादिताको अपना खेल नहीं खेलने देंगे। हम विघटनकारी तत्त्वोंको सहन नहीं करेंगे।

मृत्युसे अमरत्वकी ओर

(लेखक—प्राध्यापक श्रीदिनकर राव साध, एम्० ए०)

आज जीवनकी इस अन्तिम यात्रामें अकस्मात् मायासे मेरी भेंट हो गयी। उसने मुझसे पूछा—

माया—अरे पथिक! तुम इतने शान्त, निर्विकार भावसे इस अनजानी, सुनसान राहपर किधर जा रहे हो?

पथिक—मैं उस जीवन-अमृतको प्राप्त करनेके लिये जा रहा हूँ, जिसे पा लेनेपर कभी कोई अतृप्त नहीं रहता—मानव-जीवन सार्थक हो जाता है।

माया—अरे भोले पथिक! यह जीवन-अमृत एक कल्पना है, एक भ्रान्ति है, मृग-मरीचिका है, यह वास्तविक जीवनसे पलायनकी प्रवृत्ति है।

जीवनका महान् सुख तो तुम्हारे पास है। तुमने इतने सम्पन्न, शिक्षित, सभ्य और सुहृद्, माता-पिता, भाई-बहिन और रिश्तेदारोंके बीच जन्म लिया। ये लोग सारा वैभव और स्नेह तुमपर लुटा रहे हैं। इस संसारमें ऐसे बिरले लोग होते हैं, जिन्हें इतना सुख प्राप्त होता है। तुम्हारा घर धन-धान्यसे परिपूर्ण है। तुम स्वयं शिक्षित हो। तुम्हारा स्वास्थ्य और रूप सुन्दर है। तुममें अनेक सांसारिक कार्य करनेकी प्रतिभा है। क्या तुम्हें इन सबमें सुख नहीं प्रतीत होता?

पथिक—नहीं, बिल्कुल नहीं।

माया—अरे नासमझ पथिक! यह जगत् कितना सुन्दर, सरस और वैभवयुक्त है। प्रकृतिकी छटा कितनी अद्भुत और मनमोहिनी है। नदियोंमें कल-कल करता हुआ जल निरन्तर बह रहा है। पर्वतोंके नीले शिखर सूर्यकी रोशनीमें जगमगा रहे हैं, वृक्ष हरे-भरे पत्तों और स्वादिष्ट फलोंके भारसे झुक गये हैं। नाना प्रकारके पक्षी स्वच्छन्द होकर आकाशमें विचरण कर रहे हैं। इस संध्याकी शान्तिमें दूर कोई बाँसुरी बजा रहा है। कल प्रातःकाल होनेपर सूर्य फिर सम्पूर्ण आभा लेकर निकलेगा और जन-जनमें जीवन बिखेर देगा। इन सबको देखकर भी तुम आशाहीन और निःस्पृह कैसे हो रहे हो?

आशा ही जीवन है और निराशा मृत्यु!

पथिक—माया! जगत्में सर्वत्र फैली हुई यह लीला वास्तवमें अद्भुत है, परंतु इसीमें मोह बनाये रखना और

इसीको जीवनका यथार्थ तत्त्व मान लेना ठीक नहीं है। आशा ही जीवन नहीं है, वरं इससे बहुत कुछ अधिक है।

यह जीवनकी आशा, उस मृगकी तृष्णाके समान है, जबकि वह अपनी लम्बी यात्रापर होता है और उसे प्यास लगती है तब उसे मरुस्थलमें सूर्यकी रोशनीमें चमचमाती रेत, जलका सरोवर दिखायी देता है। उसे आभास होता है कि हरित भूमि भी कहीं आसपास है। उसकी यह जलतृष्णा उसे बार-बार तपती जलती बालूमें इधर-उधर दौड़ाती है। अन्तमें उसे प्राप्त होती है परेशानी, बेचैनी और मृत्यु!

इसी तरह निराशा ही मृत्यु नहीं है। जब जीवन-अमृतकी खोजसे मन भटक जाय तब हम उसे मृत्यु कह सकते हैं। परंतु सांसारिक पदार्थों और वैभवोंसे निःस्पृहता, किसी भी रूपमें मृत्यु नहीं है।

और फिर मुझे तो मृत्युका कोई भय नहीं है। यह भय उन लोगोंको है जिन्होंने जो कुछ इस जगत्‌में दिखायी देता है और प्राप्त है उसीको अपना स्वरूप या अपनी सत्ता बना लिया है। उन्होंने इन सांसारिक वस्तुओंको—जैसे शरीर मैं, नाम मैं, मेरा घर, मेरा परिवार, मेरी सम्पत्ति और मेरी प्रतिष्ठा इत्यादि, केवल मात्र इन्हींको ही अपना अस्तित्व और जीवन मान रक्खा है। वे इससे अलग होना नहीं चाहते। उन्हें अवश्य ही यह डर बना रहता है कि मृत्यु उनसे यह सब छीन लेगी।

माया—परंतु पथिक! इस समाजमें ऐसे कितने लोग हैं जो तुम्हारे इन विचारोंसे सहमत हैं। तुम इस समाजके अविच्छिन्न बन्धनमें हो। तुम्हें यह उक्ति याद होगी 'मनुष्य स्वतन्त्र जन्म लेता है पर वह सर्वत्र बन्धनोंमें है।'

पथिक—माया! इतना समझो कि समाजके जो लोग मुझे अपनी मान्यताओं और विश्वासोंमें बाँधनेको इतने तैयार हैं, इनमेंसे ऐसे कितने लोग हैं जो दिव्य-जीवन या जीवन-अमृतकी प्राप्तिके हेतु मेरे साथ मृत्युका वरण करनेको तैयार हैं? फिर भी मुझे समाजसे कोई शिकायत नहीं है; क्योंकि समाज भी तो मेरा ही प्रतिबिम्ब है। समाज मेरे मार्गमें कहीं भी बाधक नहीं है। समाजकी अपेक्षा मैं अपने स्वयंके मनोराज्यमें अधिक हूँ।

चित्तकी निर्दोष स्थिति ही उसे प्राप्त करनेका उत्तम साधन है। जब मन शान्त हो, निर्विकार और विचार-शून्य हो, परंतु साथमें जाग्रत् हो ऐसी अवस्थामें उस दिव्य जीवन या अमृतत्वकी प्राप्ति होती है।

मैं इस सुनसान राहपर निश्चल, शान्त, निर्विकार और विचारशून्य चित्तसे उसी दिव्य ज्योतिकी प्रतीक्षामें खड़ा हूँ।

सुनो, उस दिव्य संगीतकी ध्वनि अब स्पष्ट सुनायी दे रही है, उस ज्योतिका प्रकाश अब मेरे समीप आता जा रहा है और माया! तुम्हारा क्षणिक अस्तित्व विलीन होता जा रहा है।

सच ही तो है, जगत् माया! तुम्हारी लीला उस प्रकाशमान, अनादि, परमब्रह्म परमात्माके सामने कैसे टिक सकती है, जिसके वशमें तीनों काल एवं तीनों लोक हैं।

यह ज्योतिका अंश अब दिव्य ज्योतिमें मिलने जा रहा है। प्रणाम।

असतो मा सद्गमय
तमसो मा ज्योतिर्गमय।
मृत्योर्माऽमृतं गमय॥

हे परमपिता! मुझे असत्यसे सत्यकी ओर ले चलो, अन्धकारसे प्रकाशकी ओर ले चलो और मृत्युसे अमरत्वकी ओर ले चलो।

क्या हम सचमुच जी रहे हैं ?

(लेखक—श्री बी० एल्० 'अरविन्द' एम्० ए०)

'जब मनुष्यके सदाचारपर दुराचार, मानवतापर दानवता, आध्यात्मिकतापर भौतिकता, आस्थापर अनास्था और नैतिकतापर अनैतिकता पूर्ण रूपसे छा जाते हैं, तो हमें यह मानना ही पड़ेगा कि संस्कृतिके शाश्वत जीवनने आत्महत्या कर ली है।'

विश्वकी जनसंख्यामें जिस अबाध गतिसे निरन्तर वृद्धि हो रही है, उससे भी अधिक गतिसे मनुष्यसे मनुष्यताका लोप होता जा रहा है। कहनेको तो हम आस्थाके युगमें जी रहे हैं, लेकिन इन कुछ वर्षोंमें हमारे माननीय मूल्यों और नैतिक आदर्शोंका जिस क्रमसे ह्रास हुआ है, वह वास्तवमें एक ऐसा प्रश्नवाचक संकेत है, जिसका हल ढूँढ़ना आजके प्रत्येक बुद्धिजीवीके लिये नितान्त आवश्यक है।

आज हम जिस अस्थिरता, अनिश्चितता, आशंका, संदेह, भय, निराशा, कटुता और हिंसा-प्रतिहिंसाकी वृत्तिके बीच जी रहे हैं, उससे कभी-कभी हमें अपने अस्तित्वपर भी संदेह होने लगता है और कभी-कभी हम अपने-आपसे यह सवाल कर बैठते हैं, 'क्या हम सचमुच जी रहे हैं ?'

जीवनका अर्थ केवलमात्र मांस-पिण्डके हिलने, साँस चलने अथवा हाथ-पैर हिलानेतक ही सीमित रखना जीवनके शाश्वत स्वरूपकी हत्या करना होगा, विशेषकर भारतीय संस्कृतिमें जीवन हमारे सनातन आदर्शों, आध्यात्मिक उपलब्धियों और सम्पूर्ण आन्तरिक विकासका प्रतीक रहा है। शरीर नाशवान् है, किंतु जीवन नहीं। जीवन तो आत्माका ही पर्याय है। आत्माकी तरह ही जीवन प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूपसे सर्वत्र प्रतिबिम्बित है।

जीवन एक प्रेरणा है, जो हमें अज्ञातकी ओर ले जाती है। जीवन वह मार्ग है, जिसपर चलकर हम अपने मानवीय लक्ष्योंको पूरा करते हैं और जीवन वह पूर्णता है, जिसे पाकर हम उस अखिलेशको जान सकते हैं।

इसलिये वास्तवमें जीनेका अधिकार उसीको है, जो उपर्युक्त जीवन जीता है। खाने-पीने, विलास और ऐश्वर्यके लिये जीवन धारण करना न तो जीवनका सच्चा स्वरूप ही है और न ऐसे व्यक्तियोंको हम दार्शनिक अर्थमें जीवित होनेकी संज्ञा ही दे सकते हैं।

आज समस्त विश्वकी जो तनावपूर्ण और गिरी हुई स्थिति है, उसे केवल 'दुर्भाग्यपूर्ण अवस्था' ही कहा जा सकता है। वियतनामका भीषण संघर्ष, अरब-इसरायल-संघर्ष, भारत-पाकके बिगड़ते सम्बन्ध, चीनकी विस्तारवादी नीति, अमेरिकाकी साम्राज्यवादी भावना आदि-आदि कई ऐसी विनाशकारी शक्तियाँ आज इतनी सक्रिय हैं कि किसी भी क्षण समूची मानवता भयंकर विनाशकी लपेटोंका शिकार बन सकती है। शान्तिके प्रस्ताव, सन्धियाँ-समझौते और 'डेलीगेशन्स' व्यर्थ और नाकाम सिद्ध हो चुके हैं। विज्ञानके नामपर हम अपनेको सभ्य और सुखी भले ही कह लें, लेकिन मैं तो यही समझता हूँ कि इस वैज्ञानिक जगत्में हम इतने गिर गये हैं कि अपने मानवीय कर्त्तव्यों और जीवनके सच्चे उद्देश्योंको ही हमने भुला दिया है। हमारे युगके विश्वप्रसिद्ध चिन्तक डा० राधाकृष्णन्ने इस प्रकारकी विध्वंसकारी प्रवृत्तियोंको 'दुर्भाग्यपूर्ण' और 'मानवताकी भावनाके लिये अपमानजनक' बताया है। इसी प्रकार महान् विचारक श्रीबर्ट्रेंड रसलने भी हमें चेतावनी देते हुए कहा है—

'We have reached the point, where we are sure to destroy.'

'हम उस विन्दुपर पहुँच गये हैं, जहाँ हमारा ध्वंस निश्चित है।'

यह सब क्यों ? क्योंकि पर्याप्त और समुचित स्वस्थ वातावरण और ज्ञानके अभावमें हमारी अन्तः-स्मृति मर-सी गयी है। मानवकी अविवेकयुक्त भौतिक महत्त्वाकाङ्क्षाएँ उभर चली हैं। उसका दृष्टिविन्दु इतना संकीर्ण हो चला है कि उसे सिवा अपने हित और भौतिक सुखके कुछ नहीं सूझता। इसी आसुरी महत्त्वा-काङ्क्षाने उसे भ्रष्टाचार, धूर्तता, छल, कपट, धोखा और युद्ध-जैसे सभी भयंकर अस्त्रोंका प्रयोग सिखा दिया है। उसमें अहंभाव प्रवल हो चला है, वह ताकत और तलवारसे, हिंसासे और दवावसे दूसरोंपर हावी होनेकी कुचेष्टा करता है। आजकी राजनीतिक विषमता और विश्वके तनावपूर्ण सम्बन्ध उसीके दुष्परिणाम हैं।

लेकिन हमारी संस्कृतिने हमें निराशावादी होना नहीं सिखाया। हम आशावादी हैं और यह मानते हैं कि इस अन्धकारमें प्रकाशकी किरण लाना कठिन भले ही हो, असम्भव नहीं है। हम हमारे विवेकपूर्ण संयुक्त सात्त्विक प्रयासोंसे अभी भी आहत मानवताको जिला सकते हैं।

किंतु इसके लिये हमें अपना स्वरूप ही वदलना होगा। इसके लिये हमें फिरसे उस अमर मन्त्रका उच्चारण करना होगा, जो हमें उस 'महान् सत्य'की ओर ले जानेका संकेत करता है।

असतो मा सद् गमय,
तमसो मा ज्योतिर्गमय,
मृत्योर्मामृतं गमय।

दूर-दूर तक दृष्टि फैलाने और वाहरी दुनियामें सुख-शान्ति पानेका असफल प्रयास छोड़कर हमें हमारी आत्मामें झाँकने, उसके स्वरूपोंको जाननेका यत्न करना चाहिये। आत्मज्ञान सर्वोपरि है। सारे सुख, शान्ति, ज्ञानकी जननी आत्मा ही है, हमारा परमपिता उसीमें तो रहता है, देखिये:—

ज्योतिरात्मनि नान्यत्र समं तत्सर्वजन्तुषु।
स्वयं च शक्यते द्रष्टुं सुसमाहितचेतसा॥

अर्थात् उसकी (परमात्माकी) ज्योति आत्मामें ही निवास करती है, अन्यत्र नहीं—यह सभी प्राणियोंमें समान रूपसे प्रकाशित है जिसे मनकी शान्तिद्वारा स्वयं देखा जा सकता है।

आत्माकी शान्ति परम मङ्गलकारी और कल्याणकारी होती है, जिसे प्राप्त करनेवाले बड़े-बड़े संत-महात्मा अपने साथ-साथ दूसरोंको भी संसारसागरसे पार उतार देते हैं।

इस प्रकार आत्मज्ञान और जीवनकी शान्तिके लिये हमें अपने जीवनका दृष्टिकोण ही बदलना होगा। हमें अपने लिये नहीं, दूसरोंके लिये जीना होगा। दूसरोंको नहीं, अपनेको पहचानना होगा; दूसरे सबमें अपनी आत्माको ही देखना होगा, शरीरको नहीं। आत्माको पढ़ना होगा और उस आत्माकी गहराईमें उतरकर हमें उसमेंसे प्राप्त होनेवाले ज्ञान-मोतियोंको ऊपर लाना होगा, ताकि उनके प्रकाशसे हम सभीको प्रकाशित कर सकें। इससे मनुष्यकी कुप्रवृत्तियाँ अपने-आप उसी प्रकार अदृश्य हो जायँगी, जिस प्रकार सूर्योदय होनेपर अन्धकार स्वतः ही न जाने कहाँ विलीन हो जाता है। एक ऐसा प्रकाश हमें मिल सकेगा, जो हमें अमर प्रेमकी ओर अग्रसर करेगा। त्यागसे प्रेम, प्रेमसे सेवा, सेवासे आत्मीयता, आत्मीयतासे आनन्द, आनन्दसे ज्ञान और ज्ञानसे विशुद्धज्ञान—परम कल्याण या ईश्वरका प्रत्यक्ष। इसी अवस्थामें हम समस्त विश्वमें हमारी आत्माको और हमारी आत्मामें सम्पूर्ण विश्वको देख सकेंगे—यही हमारे जीवनकी पूर्णता होगी, यहीं हम मुक्त हो सकेंगे।

गीतामें भगवान् कहते हैं—

सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि।
ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः॥
(६।२९)

'सर्वत्र आत्माके साथ एकताको प्राप्त पुरुष अपनेको सब प्राणियोंमें और सब प्राणियोंको अपनेमें देखता है।' मनुस्मृतिमें सच्चे स्वराज्यकी प्राप्तिके लिये कहा गया है—

सर्वभूतेषु चात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि।
समं पश्यन्नात्मयाजी स्वराज्यमधिगच्छति॥

अर्थात् जो सर्वस्व त्यागकर सबमें अपनेको और अपनेमें सबको देखता है, वह स्वराज्य प्राप्त करता है।

हमें यही गुरुमन्त्र सीखना है कि कभी आत्माके प्रतिकूल आचरण नहीं करें, किसी भी प्राणीका कभी अहित न करें। सद्भावना, विश्वास और प्रेमका वातावरण व्याप्त करें। प्रेमसे बढ़कर कोई मूल्यवान् वस्तु नहीं है। प्रेमका आधार है—त्याग। हम अन्य सबके लिये त्याग करें। प्रेमके द्वारा, विश्व-प्रेमके द्वारा, ईश्वरको पाया जा सकता है—

अंग्रेजी कवि S. T. Coleridge ने कहा है—

He prayeth best who Loveth best.

(वही श्रेष्ठ भक्ति करता है, जो श्रेष्ठ प्रेम करना जानता है।)

अन्तमें, यद्यपि वर्तमान वातावरण अत्यन्त भौतिकवादी और विध्वंसात्मक हो चला है, किंतु फिर भी मैं नहीं मानता कि हमारा भविष्य अन्धकारमय है। ईश्वर जो हमारा पिता है, संरक्षक है, गुरु है, मित्र है, पथप्रदर्शक और सर्वस्व तथा सबका आत्मा है, उससे हम प्रार्थना करें और उसकी छायामें अपनेको, सभीको बदलनेका संकल्प लें, तो सभी कुछ सम्भव है।

हमारा विश्वास हो कि—

'The one God hidden in all things,
All-pervading, the Inner Soul of all things,
The overseer of deeds, in all things abiding,
The witness, the sole thinker, devoid of all qualities,
The one Controller of the inactive many,
Who makes the one seed manifold—
The wise who perceive Him as standing in one's self,
They, and no others, have eternal happiness.'

एक ही परमात्मा सभी भूतोंमें छिपे हुए हैं; वे सर्वव्यापी हैं, समस्त भूतोंके अन्तरात्मा हैं। वे सबके कर्मोंका निरीक्षण करते हैं, सभी भूतोंमें निवास करते हैं; वे साक्षी (सर्वद्रष्टा) हैं, परम चेतनस्वरूप—सबको चेतना देनेवाले हैं और प्राकृतिक गुणोंसे रहित हैं। वे बहुत-से निष्क्रिय तत्त्वोंका नियमन करनेवाले हैं। वे एक ही प्रकृतिरूप बीजको अनेक रूपोंमें परिणत कर देते हैं। जो बुद्धिमान् पुरुष उन्हें अपने आत्मामें नित्य स्थित देखते हैं, वे ही शाश्वत परम सुखको प्राप्त होते हैं, दूसरे नहीं।*

---

* यह श्वेताश्वतर उपनिषद्के निम्नलिखित (६।११-१२) मन्त्रोंका ही भाषान्तर है—

एको देवः सर्वभूतेषु गूढः सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा। कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च॥
एको वशी निष्क्रियाणां बहूनामेकं बीजं बहुधा यः करोति। तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरास्तेषां सुखं शाश्वतं नेतरेषाम्॥

पढ़ो, समझो और करो

(१)

असम्भव सम्भव

बन्धुओ ! अधिकारियोंका एक दल एक ऐसे स्थानका सर्वेक्षण करनेके लिये निकला था, जहाँ नदीकी उपद्रवी धाराको नियन्त्रित करनेके लिये एक बाँध बनानेकी योजना थी। संध्याके समय वे लौटकर नदीके तटपर आये, जिससे कि वे नदी पार करके अपने केन्द्रीय कार्यालयपर पहुँच सकें।

तटपर नाव थी और मल्लाह भी था। वहाँ एक दल पहलेसे ही उपस्थित था, जो पार उतार देनेके लिये मल्लाहसे आग्रह कर रहा था, परंतु मल्लाह नदीकी बाढ़की ओर इशारा करके अपनी असमर्थता-सी प्रकट कर रहा था। ज्यों ही उन लोगोंने अधिकारियोंको देखा, उनमेंसे एक आगे आकर बोला—'साहब ! हमलोगोंको किसी प्रकार नदी-पार होना ही चाहिये जिससे कि हम नवाब साहबके जन्म-दिवसके उत्सव-पर ठीक समयसे पहुँच सकें। और उन्होंने विशाल राज्यके नवाब साहबका नाम बतलाया। (यह प्रसङ्ग उस समयका है जब भारतपर विदेशी सत्ताका शासन था।)

मल्लाहने अधिकारियोंको देखा और वह हाथ जोड़कर खड़ा हो गया। तभी झोपड़ीके अंदरसे एक नर्तकी युवती आकर्षक मुसकान बिखेरती हुई बाहर निकली और एक अधिकारीके प्रति, जिसके मनकी दुर्बलताको उसकी आँखोंने पहचान लिया था, कहने लगी—'साहब ! आज रात्रिमें मेरा नृत्य होगा। यह हमलोगोंकी आजीविकाका सवाल है। क्या आप हमारा इतना-सा काम नहीं बनवा देंगे ?' उस अधिकारीने मुसकानसे उसका अनुमोदन किया और मल्लाहको नाव खेनेके लिये आदेश दिया।

सभी नावमें बैठ गये। नाव काफी बड़ी थी। मल्लाहने पतवार हाथमें ली और खेना आरम्भ कर दिया।

किसीने पूछा—

'दूसरा मल्लाह कहाँ है ?'

'साहब ! गयी साल एक डूबते हुए आदमीको बचानेमें उसकी जान चली गयी।'

'तुम किसी दूसरेको मजदूरीपर क्यों नहीं रख लेते ! बहुत-से ऐसे मिल जायँगे जो प्रसन्नतासे मजदूरी करना चाहेंगे।' उस युवतीने कहा।

'मेम साहब ! मेरे पास पैसा नहीं है। जिसकी जान चली गयी, वह तो मेरा लड़का ही था।'

बूढ़े मल्लाहके जीवनकी इस दुःखद घटनाको सुनकर वह युवती करुणासे सिहर गयी और करुणापूर्ण शब्दोंमें उसने कहा—'यह जानकर मुझे बड़ा दुःख हो रहा है, भगवान् उसकी आत्माको शान्ति दें।'

नाव बीच धारामें आ गयी थी। नदीकी धाराका वेग बड़ा ही तीव्र था। मल्लाह अपने वृद्ध और अनुभवी हाथोंकी पूरी शक्ति लगाकर नाव खे रहा था। अकस्मात् उसका एक डाँड़ किसी चीजमें फँस गया। नदीमें जोरदार बाढ़ आ ही रही थी और शायद बाढ़से उखड़ा हुआ यह कोई वृक्ष था जो धारामें बहता हुआ आ रहा था। उस वृक्षमें फँसते ही डाँड़ टूट गया और मल्लाहके हाथमें उसका एक हिस्सा मात्र रह गया।

नावको एक जोरका झटका लगा। झटका लगते ही उस अधिकारीका, जो दूसरे डाँड़के साथ चुलबुली करके युवती नर्तकीका ध्यान अपनी ओर आकर्षित करना चाहता था, संतुलन बिगड़ गया और वह नावमें गिर पड़ा। दूसरे लोग उस अधिकारीको उठानेके लिये दौड़े किंतु साथ ही वह डाँड़, जो उनके हाथसे फिसलकर धारामें गिर गया था, धाराका तीव्र वेग उसको बहा ले गया।

एक डाँड़ टूट गया और एक बह गया। मल्लाह पूर्णतः निराश हो गया। पर तुरंत ही उसने हिम्मत बाँधी और कालके गालमें जाती हुई नावको बचानेके लिये बाँसके डाँड़को हाथमें उठाया। नावके इस सिरेसे उस सिरेतक उसने कई बार चक्कर लगाये, पर नदीमें भयंकर बाढ़ थी, जगह-जगह भँवर थे, अतः उस बाँसके डंडेसे क्या होना-जाना था ! फिर भी उसने चेष्टा की······।

तभी एक व्यक्ति नावमें खड़ा हो गया और खड़े होते ही नाव डगमगाने लगी। दूसरे लोग उसपर हल्ला मचाने लगे। तब उस बूढ़े मल्लाहने ठंडे मनसे कहा—'जो जहाँ

हैं, वहीं पर बैठ जायँ। हर-एक व्यक्तिको भगवान्‌से प्रार्थना करनी चाहिये। भगवान् महान् हैं।'

ज्यों ही उसने ऐसा कहा, अस्तोन्मुख सूर्यकी अन्तिम किरणोंमें उस बूढ़े मल्लाहकी सफेद दाढ़ी एक क्षणके लिये चमक उठी। जहाँपर वह था, वहींपर वह एक क्षणके लिये खड़ा हो गया और ऊपरकी ओर देखा······दूसरे ही क्षण बाँसका वह डंडा भी बह गया।

नावमें बैठे हुए लोगोंके बीच आतंक छा गया। नदीके वेगमें नाव इस प्रकार बही जा रही थी, मानो धारापर चिड़ियाका कोई पंख हो। उस मल्लाहने फिर पहले डाँड़का टूटा हुआ हिस्सा उठाया और कहा—'भगवान्‌ने कई बार मुझे नदीमें मौतके मुँहसे बचाया है पर आज तो हालत कुछ और ही है। ऐसा लगता है—भगवान् प्रेरणा कर रहे हैं कि हमलोग अपने पापोंके लिये क्षमा-याचना करें।'

अचानक एक चीख सुनायी दी। भग्नहृदय फूट-फूटकर रो रहा था। गहरी साँस लेते हुए उस बूढ़े मल्लाहने कहा—'हमलोग प्रपातके पास आते जा रहे हैं। आगे बहुत बड़ा जल-प्रपात है। शीघ्र ही नाव प्रपातमें गिरकर ध्वस्त हो जायगी।······भगवान् हमें हमारे पापोंके लिये क्षमा-प्रदान करें।' तुरंत एक करुण रुदन और सुनायी दिया और वह युवती बिलखते हुए कहने लगी—'हे नाथ! मेरे जघन्य पापोंका फल ये निरपराध लोग भला क्यों भोगें?'

अन्धकार बढ़ता चला जा रहा था और मृत्युकी भयंकर विभीषिका भी बढ़ती चली आ रही थी। एक व्यक्तिने कहा—'बेटी! घुटने टेककर भगवान्‌से प्रार्थना कर। क्षमा-याचनामें देर-अबेरका प्रश्न ही नहीं।'

भयातंकित उस बूढ़े मल्लाहने सबको सावधान कर ही दिया था। वह प्रपात, आ गया वह जल-प्रपात,······नाव जा गिरी उस भीषण प्रपातमें, घोर गर्जना करते हुए प्रपातकी भयावह धाराने नावको आत्मसात् कर लिया और सब लोग······।

उस दलका एक व्यक्ति, जिसने इस घटनाका वर्णन सुनाया था, आजतक आश्चर्य-चकित है कि नाव, मल्लाह और सभी यात्री उस अवश्यम्भावी विनाशसे कैसे बच गये। घटनाको याद करके उसने बताया कि—'उस समय उसकी आँखोंके चारों ओर अँधेरा छा गया था। चारों ओर विस्मृतिका अन्धकार था। और फिर इतनी ही स्मृति है कि नाव तटके समीप सुरक्षित खड़ी है और घुटनेभर पानीमें खड़ा हुआ मल्लाह नावको पकड़े हुए है।'

एक बात और उसे याद थी, जिसे जीवनके अन्तिम क्षणतक भी भुला सकना उसके लिये सम्भव नहीं······विस्मृतिका अन्धकार छानेके पूर्वका एक दृश्य अच्छी तरह याद है कि वह नर्तकी युवती प्रार्थना कर रही थी। उसके कपोलोंपर आँसुओंकी धारा बह रही थी, उसके अधर धीरे-धीरे हिल रहे थे और अपनी सुबकियोंको रोकनेके प्रयासमें संलग्न सम्भवतः वह प्रभुसे कुछ निवेदन कर रही थी।

और जब वह नाव तटसे लगी, तब भी केवल वही प्रसन्न-मुद्रामें अपनी प्रार्थनामें लीन थी, बाकी सर्वत्र अस्त-व्यस्तता थी।

प्रफुल्ल प्रशान्तिसे उसका चेहरा दमक रहा था और वह प्रफुल्ल प्रशान्ति अमिट आशाका एक संदेश दे रही थी कि 'वे' किसी प्रकार भी अवाञ्छनीय मृत्युसे ग्रस्त नहीं होने देंगे।

—रामेश्वरनाथ योगी

(२)

जबानकी कीमत

मेरे पिताजीके देहावसानके बाद मैं अपने पिताजीके मालिकके यहाँ ही रहता था। ये भले महान् परोपकारी मालिक मेरे पिताकी तरह ही देख-भाल रखते। इतना ही नहीं, वर्षोंसे मैं इनके मकानमें रहता हुआ अपना अलग काम-धंधा करता चला आ रहा था, तथापि इन्होंने कभी मुझसे मकानका भाड़ा नहीं लिया। जब वह मकान बेचा गया, तब खरीदनेवाली पार्टीके साथ केवल जबानी बात करके एक लाख बीस हजार रुपये कीमत तै की गयी। इसके लिये न कोई बयाना लिया गया था, न किसी प्रकारकी लिखा-पढ़ी ही हुई थी।

इस मकानमें मेरे सिवा दूसरा कोई रहता ही नहीं था, इससे मकानके बाबत पूछ-ताछ करनेवाले दूसरे लोग मेरे पास ही आया करते थे। एक पार्टीको यह मकान बहुत ही पसंद आया; क्योंकि समुद्रके समीप होनेके कारण इसका प्राकृतिक सौन्दर्य बड़ा आकर्षक था। उस पार्टीके

द्वारा पूछे जानेपर मैंने बताया कि 'इसका एक लाख बीस हजारमें सौदा हो गया है।' तब उस पार्टीने कहा कि 'चाहे जैसे भी हो, यह मकान मुझे दिलवा दीजिये, मैं दो लाख रुपये दूँगा।' मैंने कहा—'सेठ तो दिल्ली हैं, मैं पत्र लिखकर पूछूँगा।' यह सुनकर वे चले गये।

मुझे यह तो विश्वास था कि सेठजी अपना विचार कभी नहीं बदलेंगे, तथापि अस्सी हजार रुपये अधिक मिल रहे थे, इससे मैंने दिल्ली पत्र लिख दिया। पत्रका कोई उत्तर नहीं मिला। जब सेठजी बंबई आये, तब मैंने उनसे बात की। उन्होंने कहा—'अपने मकान खरीदने-वाली पार्टीको जबान दी हुई है, अब उसे इन्कार कैसे किया जाय?' मैंने कहा—'तीन-चार महीनें पहले केवल जबानी बात हुई थी। अपने न तो कोई लिखा-पढ़ी की और न बयाना ही लिया। रुपये अस्सी हजार अधिक आते हैं, इसलिये यह लाभ क्यों न उठाया जाय?' सेठजी तुरंत ही बोले—'पैसोंका क्या करना है! मुझसे जबान नहीं बदली जा सकती।'

यह सुनकर मैं तो दंग रह गया। अस्सी हजारकी रकम अधिक मिलती है, पर ये उसे ठोकर मार रहे हैं! यह प्रसङ्ग बड़ा अद्भुत है। जहाँ भ्रष्टाचारसे खदबदाते हुए देशमें आज पैसोंके पीछे पड़े लोगोंने सारी नीतिको निर्वासित कर दिया है, बल्कि जहाँ नीतिका स्वरूप ही मरने जा रहा है, वहाँ इतने रुपयेके लिये भी जबान न बदलनेवाले महानुभावके दर्शनका सौभाग्य मुझे मिला। यह प्रसङ्ग मेरे जीवनमें अङ्कित रहेगा।

ये महान् विभूति थे—श्रीमीनू मसाणीके पिता, बम्बईके सबसे पहले भारतीय म्युनिसिपल कमिश्नर, एक समयके बम्बई विश्वविद्यालयके वाइस चान्सलर और देशकी अनेक संस्थाओंके साथ सम्बन्धित महानुभाव स्व० सर रुस्तम पी० मसाणी महोदय। 'अखण्ड आनन्द'

—मनुभाई कण्ट्राक्टर

(२)

अन्तिम क्षणतक ईमानदारी

अभी हालमें दक्षिण कोरियाके एक दैनिक समाचार-पत्र 'कांग्वान आइल्बो'में यह मर्मस्पर्शी आदर्श घटना प्रकाशित हुई है। सन् १९४७की वसन्त ऋतु आ गयी, फिर भी विश्वयुद्धके परिणाम स्वरूप हुए विनाशके चिह्न अभी भी बर्लिनमें अवशिष्ट थे। उस विभाजित नगरकी सीमापर दृश्य देखनेके लिये ज्योंही एक पर्यटक-बस आकर ठहरी, विदेशी पर्यटकोंके हस्ताक्षरोंका संग्रह करनेके लिये जर्मन लड़कोंका एक समूह एकत्रित हो गया, जिनके वस्त्रोंके माध्यमसे उनकी गरीबी झलक रही थी।

एक कोरियायी पर्यटकने हस्ताक्षर करनेके बाद अपनी फाउन्टेन-पेन एक जर्मन लड़केको लिखनेके लिये दे दी। उस पर्यटकका नाम वह लड़का अभी पूरा लिख भी नहीं पाया था कि बस चल दी और आगे बढ़ने लगी। जबतक वह लड़का सिर उठाकर देखे, बस छः-सात गज आगे बढ़ चुकी थी। बसको रोकनेके लिये चिल्लाता हुआ वह लड़का पीछे-पीछे भागा, परंतु उस कोरियायी पर्यटकने, जो एक उपन्यासकार भी था, यह उचित नहीं समझा कि केवल एक पेनके लिये बसको रोककर बस-चालकको तथा अन्य पर्यटकोंको तंग किया जाय।

आठ साल बाद सन् १९५४ में उस कोरियायी लेखकको अज्ञात जर्मन महिला द्वारा भेजा हुआ एक पार्सल मिला। उसने खोलकर देखा—उस पार्सलमें चकनाचूर पेनके टुकड़े हैं तथा एक पत्र है।

उस पत्रमें लिखा था—'मेरे पुत्र हैंसने आपका पता प्राप्त करनेके लिये आठ साल तक प्रयत्न किया। हैंस यह नहीं चाहता था—एक कोरियायीके मनमें इस गलतफहमीको तनिक भी स्थान मिले कि युद्धमें पराजित जर्मन देशके एक गरीब लड़केने जान-बूझकर देर की जिससे कि बस चली जाय। यह कलकी ही बात है कि एक पर्यटक कोरियायी कविने उसको आपका पता बताया। उल्लसित हैंसने झटसे पेन ली और आपको भेजनेके लिये डाकघरकी ओर दौड़ा। तभी वह एक मोटर कारके नीचे दब गया। मरते-मरते उसने यह इच्छा व्यक्त की कि यह पेन आपके पास कोरिया भेज दी जाय।

कृपया आप विश्वास करें, पेन लेते समय उस जर्मन बालकमें किसी प्रकारकी भी बदनीयती नहीं थी।'

—श्री पी० एस० सिंघल

(४)

मन्त्र-जापसे रोग-मुक्ति

इस घोर जडवादी युगमें अनेक शिक्षित व्यक्ति मन्त्र, उपासना एवं ईश्वर-भक्तिके चमत्कारोंपर विश्वास नहीं करते। इन्हें केवल पाखण्ड और अन्धविश्वासमात्र समझते हैं; पर विश्वमें कई बार ऐसी घटनाएँ घटती हैं, जिनके रहस्यको खोजना विज्ञानके सामर्थ्यके भी बाहर होता है।

सन् १९६४ की घटना है।

उन दिनों मैं अमरसर (जिला जयपुर, राजस्थान) में विज्ञानके प्राध्यापक पदपर कार्य कर रहा था। मेरे पड़ोसमें एक सज्जन रहते थे। आयु होगी साठ वर्षके लगभग। पेन्शन पाते थे। इससे पूर्व राजकीय सेवामें थे। प्रकृतिसे सरल, सात्त्विक एवं आस्तिक।

एक दिन अकस्मात् वातव्याधि (Rheumatism) ने उनपर आक्रमण किया। आक्रमण भयानक था। उनकी दक्षिण भुजा आक्रान्त हो गयी। उन्होंने समझा एक-दो-दिनमें दर्द कम हो जायगा, पर रोग बढ़ता ही गया। डाक्टरों-वैद्योंका इलाज भी चला, पर विशेष लाभ न हुआ। कई तरहकी होम्योपैथिक तथा आयुर्वेदिक दवाइयाँ दी गयीं, पर लाभ किंचित् मात्र ही हो पाया। दिनमें कुछ आराम मिलता था, पर रात्रिमें फिर दर्द बढ़ने लगता। रोग धीरे-धीरे सारे शरीरमें फैल गया।

एक दिन सायंकालको मैं उनके पास ही बैठा था। उन्हें सान्त्वना दे रहा था।

वे कहने लगे—'रोग तो बढ़ता ही जा रहा है। मैं जीवित भी रह सकूँगा या नहीं; कह नहीं सकता। ईश्वरने न जाने, मुझे पूर्वजन्मके किन पापोंका दण्ड दिया है।'

मैंने आश्वासन देते हुए कहा—'घबराइये नहीं। ईश्वर सब ठीक करेगा। ईश्वर दीनबन्धु है, करुणानिधान है। विश्वास रखिये, ईश्वरकी कृपासे आप कुछ दिनोंमें पूर्णरूपसे स्वस्थ हो जायँगे। डाक्टर-वैद्योंका इलाज तो आप करवा चुके, अब डाक्टरोंके भी डाक्टरका इलाज करवाइये।'

उन्होंने कहा—'वह कौन है ?'

मैंने कहा—'वह है परमपिता परमेश्वर।' कल मैं आपको कल्याणका 'मानसाङ्क' दूँगा। उसका आप स्वाध्याय कीजिये और एक मन्त्रका स्वयं जप करिये और करवाइये।'

मन्त्र यह है—

दैहिक दैविक भौतिक तापा। रामराज नहिं काहुहि ब्यापा॥

दूसरे दिन मैं उन्हें 'मानसाङ्क' दे आया। वे उसका नित्य स्वाध्याय करने लगे और उपर्युक्त मन्त्रका जाप भी।

ईश्वरका चमत्कार देखिये—'उन्हें आरोग्य-लाभ होने लगा, हाथ-पैरोंका दर्द कम होने लगा और पंद्रह दिनोंमें ही वे उठने-बैठने तथा चलने-फिरने योग्य हो गये।

कितना भयंकर और दुःसाध्य रोग मानसके स्वाध्याय एवं मन्त्र-जापसे दूर हो गया। ईश्वरकी लीला अपरम्पार है।

आज वे पूर्णरूपसे स्वस्थ हैं। अब नियमितरूपसे रामायणका पाठ करते हैं। अपने आरोग्य-लाभकी मूल ओषधि वे इसी मन्त्रको मानते हैं। इसके अतिरिक्त एक दोहेके जपसे भी उन्हें काफी लाभ हुआ है। वह है—

मो सम दीन न दीन हित तुम्ह समान रघुबीर।
अस बिचारि रघुबंसमनि हरहु बिषम भवभीर॥

विपत्तिके समय इस मन्त्रके जापसे काफी लाभ होता है।

दृढ़ विश्वास, श्रद्धा, सच्ची प्रीति तथा आस्तिकभावना धारण करनेसे ईश्वर अवश्य ही भक्तोंके कष्टोंका निवारण करते हैं।

यह छोटी-सी पर महत्त्वपूर्ण घटना नास्तिकों तथा भौतिकवादियोंको भी आस्तिकताकी ओर प्रेरित करती है। धन्य ईश्वरकी महिमा।

—प्रा० श्याममनोहर व्यास एम्० एस्-सी०

(५)

सच्चा संगीत

दरभंगामें प्रतिवर्ष दुर्गापूजाके अवसरपर बड़ा मेला होता है। उसमें श्रीमती गिरिजादेवी भी बुलायी गयी थीं, परंतु कार्यक्रमको लेकर आयोजकोंके साथ उनकी कुछ बोलचाल-सी हो गयी। अतएव उन लोगोंने गिरिजादेवीसे कहा कि 'आपका कार्यक्रम रात्रिको चार बजे होगा।' और जब चार बजनेको हुए, तब उन्होंने श्रोताओंसे कहा—'अब कार्यक्रम समाप्त हो गया है।' अतएव सब लोग चले गये।

श्रीमती गिरिजादेवी मण्डपमें गयीं, तब वहाँ कोई भी नहीं था। इससे उनको बड़ा दुःख हुआ। उनको यह कल्पना भी नहीं थी कि आयोजक उनके साथ ऐसा बर्ताव करेंगे। मण्डपके सामने ही श्रीदुर्गामाताकी मूर्ति थी। बगलमें

ही भगवान् शिवका मन्दिर था। और इसी समय प्रातःकाल-की पूजा आरम्भ हुई। घंटा और शङ्खकी ध्वनियोंके साथ उनके हृदयके तार भी झनझना उठे और उन्होंने मनमें निश्चय किया कि 'लोग सुनें या न सुनें, भगवान् तो सुनेंगे ही।'

श्रीमती गिरिजादेवीने दुर्गामाताजीके सामने, जो गायकोंके लिये मञ्च बना था उसपर बैठकर, आँखें बंदकर तम्बूरेके तार छेड़े और उन्हींके साथ हृदयके तार भी मिल गये। सुरमें सुर मिले और गिरिजाजीके कोकिल कण्ठसे राग अहिर भैरवका प्रवाह बहने लगा 'हे बैरागी रूप धरे मेरे मन भायो'। जहाँ सारा मण्डप खाली था, वहाँ देखते-ही-देखते तीन-चार हजार आदमी सुननेके लिये जमा हो गये।

तदनन्तर उन्होंने ठुमरीमें एक गीत गाया, फिर जोगिया-में 'जननी, मैं न जीऊँ बिनु राम' भजन गाया। गाते-गाते उनकी आँखोंसे आँसुओंकी धारा बहने लगी। अरे! सारे श्रोताओंकी आँखें भी गीली हो गयीं। शिवमन्दिरके पुजारी-ने उनके सामने आकर कहा—

'बेटी! हृदयको द्रवित कर देनेवाला ऐसा संगीत तो मैंने आजतक कहीं भी नहीं सुना। मेरी ओरसे यह भेट और माला स्वीकार करो।'

श्रीमती गिरिजादेवीने केवल इतना ही कहा—'महाराज! मुझे केवल आपका आशीर्वाद ही चाहिये। 'अखण्ड आनन्द'

—मूलजी भाई पी० शाह

(६)

बीची (एकजिमा) की अनुभूत रामबाण दवा

यह रोग बड़ा कष्टदायक है, एक बार हो जानेपर प्रायः समूल नष्ट नहीं होता। वर्षाऋतुमें यह अधिक कष्ट दिया करता है। यह दो प्रकारका होता है। एक सूखा, जो अधिक कष्ट नहीं देता, दूसरा गीला जो भयानक कष्टकर होता है। यह प्रायः हाथों और पैरोंमें होता है। किसी-किसी-के सारे बदनमें भी हो जाया करता है। शुरूमें बड़े जोरकी खुजली चलती है। फिर फफोले-से हो जाते हैं, उनमें जलन होती है, दर्द भी होने लगता है, फफोले फूटकर उनमें मवाद तथा पानी बहने लगता है। जहाँ-जहाँ मवाद लगती है, रोग फैलता जाता है। जलन और दर्दके मारे रोगी-को चैन नहीं पड़ती।

इस रोगके नाशकी नीचे लिखी अनुभूत दवा है—

'करंजवा'के बीजोंको दो दिनोंतक ठंडे पानीमें भिगोकर रखिये, फिर उन्हें छील लीजिये। अंदरसे बादामकी तरह की सफेद गुल्ली निकलेगी। उनको बकरीके दूधमें खूब महीन सीलपर पीस लीजिये और लेईकी तरह मलहम बना लीजिये। फिर उसे ताँबेके बर्तनमें रख दीजिये। एक बार बनी हुई दवा दो सप्ताह चल सकेगी। सूख जाय तो बकरीका दूध अथवा पानी मिला दीजिये।

सेवन-विधि—नीमके पत्तोंको पानीमें उबाल लीजिये। उस गरम पानीसे घावोंको धोइये और साफ कपड़ेसे पोंछ डालिये। तदनन्तर वहाँ मलहम लगा दीजिये, जब सूखकर पपड़ीकी तरह उतर जाय तो फिर लगा दीजिये। दिनमें तीन-चार बार लगाइये। रातको सोते समय भी लगाकर सोइये। इससे कपड़े खराब नहीं होंगे। आराम तो एक दिनके लगानेसे ही मालूम देगा। ३-४ दिन लगानेपर तो रोग साफ ही हो जाता है।

किसी भी प्रकारकी साबुन या साबुनका पानी नहीं लगाना चाहिये। रबड़के जूते, हवाई चप्पल, नाइलोनके मौजे व्यवहारमें नहीं लाने चाहिये। खटाई, मिर्च, गरम मसालाका सेवन नहीं करे। नमकका सेवन कम करे। 'नीम'की कच्ची पत्ती घी या नारियलके तेलमें तलकर थोड़ी मात्रामें सप्ताहमें एक-दो बार सेवन करनेसे खूनमें रहे रोगके कीटाणु नष्ट हो जाते हैं।*

—तिलकचन्द कन्दोई

* करंजके बीज सभी जगह प्रायः मिलते हैं। मैं कलकत्तेमें रहता हूँ, अतएव कलकत्तेवालोंके लिये पता लिख रहा हूँ।

(१) बड़ी मस्जिदके सामने जड़ीबूटी और हकीमी दवा बेचनेवालोंके यहाँ मिलते हैं। इनका तेल भी मिलता है जो मामूली सूखी बीचीमें लगाया जाता है।

(२) चौरंगी रोडके सामने मैदानमें, जहाँ यौगिक संघके द्वारा योगासन सिखाये जाते हैं, वहाँ इसका पेड़ है। उसपर फलियाँ लगती हैं। उन फलियोंको लाकर उनमेंसे बीज निकालकर काममें लाये जा सकते हैं।

लेखक महानुभावोंसे प्रार्थना

'कल्याण'के आगामी विशेषाङ्क उपासना-अङ्कके लेखोंका सम्पादन हो रहा है। लेख इतने अधिक आये हैं और अब भी आ रहे हैं कि उन सबका प्रकाशन कई विशेषाङ्कोंमें भी सम्भव नहीं है। एक-एक विषयपर दर्जनों लेख आये हैं। यह तो शुभ लक्षण है जो हमारे अंदर लिखनेकी प्रवृत्ति बढ़ रही है, पर साथ ही यह दुःखकी बात है कि बहुत-से लेखक केवल छपनेके लिये ही लिखकर भेजते हैं, लेखोंमें कोई खास विवेचन नहीं रहता। ऐसे लेख अवश्य ही नहीं छप सकेंगे, इसका हमें खेद है। साथ ही एक-एक विषयपर जो अनेक लेख हैं और जिनमें प्रायः सर्वथा एक-सी बातें हैं, वे सब भी नहीं छप सकेंगे। इसके लिये हम अपने कृपालु लेखकोंसे सविनय क्षमा-याचना करते हुए यह प्रार्थना करते हैं—जिन महानुभावोंसे लेख माँगे गये हैं, उनके सिवा और लेख कृपया न भेजें; क्योंकि स्थानाभावसे लेखोंका छपना सम्भव नहीं होगा और इससे सहज ही लेखकोंको दुःख होगा।

निवेदक—सम्पादक 'कल्याण', गोरखपुर

सूचना

श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारका स्वास्थ्य अभी शिथिल ही चल रहा है। गताङ्कमें पत्रादि न लिखनेके लिये प्रार्थना की गयी थी; परंतु पत्र अभी प्रायः पूर्ववत् ही आ रहे हैं और उन सबके उत्तर लिखे नहीं जा रहे हैं। इससे हमलोगोंको संकोच तथा पत्र-लेखकोंको खेद होना स्वाभाविक है। अतएव पुनः यह निवेदन है, कृपया विशेष आवश्यक होनेपर ही पत्र लिखें।

'कल्याण'के पुराने प्राप्य विशेषाङ्क (डाकखर्च सबमें हमारा है)

१—मानवता-अङ्क—पृष्ठ-सं० ७०४, मानवताकी प्रेरणा देनेवाले सुन्दर चित्र—बहुरंगे ३९, दोरंगा १, इकरंगे १०१ और रेखाचित्र ३९, मूल्य रु० ७.५० पैसे।

२—संक्षिप्त शिवपुराणाङ्क—प्रसिद्ध शिवपुराणका संक्षिप्त सार-रूप है। इसमें ७०४ पृष्ठोंकी ठोस पाठ्य-सामग्री है, बहुरंगे चित्र १७, दोरंगा १, सादा १२ तथा रेखाचित्र १३८, मूल्य रु० ७.५०।

३—संक्षिप्त ब्रह्मवैवर्तपुराणाङ्क—इसमें भगवान् श्रीकृष्णकी विविध दिव्य लीलाओंका बड़ा ही रोचक वर्णन है। पृष्ठ-संख्या ७०४, बहुरंगे चित्र १७, दोरंगा १, इकरंगे ६, रेखाचित्र १२०, मूल्य रु० ७.५०, सजिल्द रु० ८.७५।

४—धर्माङ्क—धर्म-सम्बन्धी विवेचनाओं, सुरुचिपूर्ण कथाओं, सरस सूक्तियों तथा रोचक निबन्धोंसे युक्त। पृष्ठ-सं० ७००, बहुरंगे चित्र १४, दोरंगा १, सादे चित्र ४ तथा रेखाचित्र ८१, सजिल्द (कपड़ेकी जिल्द) मूल्य रु० ८.७५।

व्यवस्थापक—'कल्याण', पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)

'कल्याण'के ग्राहक महानुभावोंको सूचना

केवल बढ़े हुए डाक-खर्चके लिये 'कल्याण'के वार्षिक मूल्यमें पचास पैसेकी वृद्धि

पिछले अङ्कमें 'कल्याण'के सम्बन्धमें एक सूचना निकली थी, उससे हमारे बहुत-से प्रेमी ग्राहकोंके मनमें बहुत पीड़ा हुई और ऐसे ग्राहकोंके बहुत-से पत्र हमारे पास आये हैं तथा आ रहे हैं, जिनमें परम स्नेह एवं आत्मीयताके साथ 'कल्याण'की उपयोगिता तथा उसके द्वारा होनेवाले कार्यके प्रति बड़ी श्रद्धा प्रकट करते हुए उसके चालू रखनेका अनुरोध किया गया है और धनके अभावसे वह बंद न हो—इसके लिये अधिक-से-अधिक वार्षिक मूल्य बढ़ाने तथा ग्राहकोंसे 'विशेष चन्दा' लेनेके लिये सदाग्रह किया गया है। प्रेमी महानुभावोंकी इस अनुकम्पा एवं प्रीतिके लिये हम उनके सदा कृतज्ञ हैं। 'कल्याण'का प्रकाशन बंद करनेका न विचार था, न है। भगवान्‌का मङ्गलविधान बंद करनेका न हुआ तो यह चालू रहेगा। वह सूचना तो इसलिये दी गयी थी कि कदाचित् अनिच्छा होनेपर भी परिस्थितिसे बाध्य होकर प्रकाशन स्थगित करना पड़े तो ग्राहक महोदय संतोष करें।

इस वर्ष सरकारने डाकखर्च बहुत बढ़ा दिये हैं, इससे केवल 'कल्याण' विभागका लगभग ७५ हजारसे अधिक वार्षिक व्यय बढ़ जायगा। साथ ही लगभग एक लाख रुपये कर्मचारियोंकी क्रमवेतनवृद्धि, वेतनवृद्धि, सहायता तथा मँहगीके निमित्तसे की हुई सामयिक वृद्धि आदिमें इस वर्ष अधिक लगेंगे। इस प्रकार लगभग पौने दो लाख रुपयेका व्ययभार बढ़ गया है, जो एक रुपया 'कल्याण'का मूल्य बढ़ानेसे भी पूरा नहीं होता। गीताप्रेस सूखा, बाढ़, अकाल आदिके समय सहायता-कार्योंमें बिना माँगे यदि कोई सहायता देते हैं, उसे तो स्वीकार करता है, पर इसके अतिरिक्त प्रकाशनसम्बन्धी किसी कार्यके लिये चन्देके रूपमें सहायता नहीं लेता। इसीलिये बाध्य होकर दो-एक बार पुस्तकोंका तथा 'कल्याण'का मूल्य बढ़ाया गया था। बहुत व्यय बढ़ जानेके कारण अभी कुछ ही समय पूर्व 'कल्याण'का मूल्य बढ़ाया गया था, इसलिये और बढ़ानेका विचार नहीं था, तथापि जो डाकखर्च बढ़ा है वह तो ग्राहकोंको देना ही चाहिये और वे देनेको तैयार हैं—हमारे पास इस आशयके ग्राहकोंके बहुत-से पत्र आये हैं।

अतएव आगामी जनवरी सन् १९६८ से केवल ५० पैसे बढ़ाकर 'कल्याण'का वार्षिक मूल्य ९.०० रुपये करना पड़ा है। हमें इसके लिये बड़ा संकोच है; पर आशा है, परिस्थिति समझकर इसे सब लोग सहर्ष स्वीकार करेंगे और अपने 'कल्याण'को बहुत अधिक घाटेसे बचायेंगे। —व्यवस्थापक 'कल्याण'